कन्याप्येव पालनीया शिक्षणीयातियत्नतः —मनु

भारत की आदर्श नारियाँ

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

लेखिका

श्रीमती स्वर्ण भार्गव, एम० ए०

प्रकाशक

प्रभात-पब्लिशिंग हाउस

नयागाँव, लखनऊ

प्रथमबार १९६९ मूल्य २ ००

मुद्रक—शुक्ला प्रेस, लखनऊ।

प्रकाशकीय

भारत मे आदि काल से स्त्रियो का कार्य-क्षेत्र सदैव प्रशस्त रहा है। पठन-पाठन की सुविधा के अतिरिक्त आत्म-ज्ञान जैसे दुरूह विषय की शिक्षा भी उनके लिये सुगम थी। चरित्र-बल पर अधिक ध्यान दिया जाता था। बाल-काल से उन्हे ऐसी शिक्षा मिलती थी, जिससे वे भविष्य मे नारी-कर्तव्य को भली-भॉति समझ जाती थी। शारीरिक व मानसिक जिस किसी विकास-क्षेत्र मे वे उतरा उन्होने अपने अलौकिक गुणो का परिचय दिया। मध्यकाल मे जब स्त्रियो को क्या, पुरुषो तक को शिक्षा की सुविधा नही थी, तब ऐसा प्रतीत हुआ कि स्त्रियो के लिये पठन पाठन आवश्यक नही। ऐसे ही समय मे मैत्रेयी और गार्गी के समान उच्च शिक्षित कदाचित् ही कोई नारी हुई हो।

अब भी ऐसे व्यक्ति हैं, जो स्त्रियो की शिक्षा को महत्त्व नही देते, वरन इसे निष्प्रयोजन समझते है। विगतकाल की स्त्रियो का जीवन उनके इस विचार मे यथेष्ट सशोधन कर सकता है। अब प्रश्न उठता है, उनकी शिक्षा कैसी हो? यही हमारे राष्ट्र के कर्णधारो को विशेष ध्यान देना चाहिए। वर्तमान समय, जिसे अब हम वैज्ञानिक काल की सज्ञा दे सकते है, पुरुषो के समकक्ष नारी-सहयोग की आवश्यकता अधिक हो गई। कोई क्षेत्र ऐसा नही, जिसमे वे किसी-न-किसी रूप मे योग न दे सके। आदि काल मे जो सुविधाऍ स्त्रियो को उपलब्ध थी, उससे कही अधिक और निर्बाध रूप से उन्हे प्राप्त है। केवल चरित्र-निर्माण की शिक्षा, जो नारी के लिये परमावश्यक है, उपलब्ध नही। यह ज्ञान तो वे धामिक पुस्तके और आदर्श, विदुषी और महती स्त्रियो के जीवन-चरित्र पढकर ही अर्जित कर सकेगी। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए मैने विशिष्ट महिलाओ के उज्ज्वलतम जीवन का समावेश इस छोटी-सी पुस्तक मे किया है। हमे पूर्ण विश्वास है, हमारे महान देश की बालिकाए एव महिलाएँ उनके आदर्श ग्रहण कर उन्ही के पद-चिह्नो पर चलने की चेष्टा करेगी।

विषय-सूची

१	विश्ववारा	५	२३	खना	४४
२	रुद्रमातृका	६	२४	मीराबाई	४८
३	वाक्	६	२५	कर्माबाई	५७
४	अपाला	८	२६	लक्ष्मीदेवी	६०
५	लोपामुद्रा	८	२७	प्रवीनराय	६१
६	अदिति	१०	२८	मधुरवाणी	६३
७	यमी	१२	२९	मोहनांगिनी	६६
८	शश्वती	१३	३०	मल्ली	६६
९	उर्वशी	१३	३१	अभया	६७
१०	घोषा	१६	३२	नाची	६८
११	सूर्या	१८	३३	विजया	६९
१२	जुहू, इन्द्राणी, शची,	२०	३४	विज्जका	७२
१३	गोधा आदि	२०	३५	शीलाभट्टारिका	७५
१४	मैत्रेयी	२२	३६	गुल्बदन बेगम	७६
१५	गार्गी	२४	३७	जेबुन्निसाँ बेगम	७७
१६	देवहूति	२६	३८	राममणि, इन्दुमुखी,	८५
१७	मदालसा	२८	३८	माधुरी, रसमयी, गोपी	८५
१८	आत्रेयी	३३	३९	माधवी	८६
१९	भारती	३५	४०	आनन्दमयी	८७
२०	लीलावती	३६	४१	गंगामणि	८९
२१	विद्या	४०	४२	बैजयंती	८९
२२	विदुला	४३	४३	मानिनी देवी	९४

१. विश्ववारा

विश्ववारा अत्रि मुनि के गोत्र मे पैदा हुई थीं। ऋग्वेद-सहिता के पाँचवे मडल के दूसरे अनुवाद का अट्ठाईसवाँ सूक्त इनका रचा हुआ है। इस सूक्त मे ६ ऋक् हैं। हरएक ऋक् एक-एक अमूल्य रत्न है। भाषा की मधुरता और भाव मे उन्हे अतुलनीय कहना चाहिए। उनका भवार्थ यह है—

"प्रज्वलित अग्नि तेज फैलाकर उषा की तरह प्रदीप्त है। देवार्चनानिरत, घृत-पात्र-युक्त विश्ववारा उनकी ओर अग्रसर हो रही है।"

'हे अग्नि, तुम प्रज्वलित होकर अमृत के ऊपर आधिपत्य फैलाओ, और हव्यदाता का मगल करने के लिये उसके निकट प्रकाशित होओ।"

"हे अग्नि, तुम हम पर प्रसन्न होओ, हमे सौभाग्य दो, हमारे शत्रुओ का दमन करो, और हमारे दापत्य प्रेम को और गभीर या गाढा कर दो।"

"हे दीप्तिशाली, तुम्हारी दीप्ति को मै पूजती हूँ, तुम यज्ञ मे प्रज्वलित रहो।"

"हे उज्ज्वलवर्ण, भक्तगण तुम्हारा आवाहन करते हैं, यज्ञ-क्षेत्र मे तुम सब देवताओ की उपासना करो।"

"हे भक्तगण, यज्ञ हव्यवाहक अग्नि मे हवन करो, अग्नि की सेवा करो, और देवताओ के पास हव्य पहुँचाने के लिये उनका वरण करो।"

२. इद्रमातृका

ऋग्वेद-सहिता के दशम मडल के १५३ सूक्त की पाँच ऋक इद्रमातृका प्रणीत है। इद्र ऋषि के पिता ने बहुत से ब्याह किए थे। उनकी जिन पत्नियो ने एक साथ मिलकर इन ऋचाओ की रचना की थी, वे इद्रमातृका के नाम से प्रसिद्ध है। इनके पिता कश्यप ऋषि तथा माता अदिति थीं। इनमे से एक का नाम देवजामि था। सौतें परस्पर ईर्ष्या-द्वेष भूलकर, एक मन होकर एक साथ मत्र-रचना करती थी। सौतो के मिलन का यह दृश्य कितना सुदर और मधुर था।

इद्रमातृका इद्रदेव के उद्देश्य से कहती हैं—

"हे इद्र, जिस तेज से शत्रु जीता जाता है, वह तेज तुममे है, इसी से हम तुम्हारी पूजा करती हैं। तुमने वृत्र को मारा है, आकाश को विस्तृत किया है, अपनी क्षमता के बल से स्वर्ग को समुन्नत कर दिया है। सूर्य तुम्हारे सहचर है, तुम उन्हे बाहु पाश से बाँधे हुए हो। इसी कारण हम तुम्हारी पूजा करती है।"

३. वाक्

अनृण ऋषि की कन्या वाक् ने ऋग्वेद-सहिता के दशम मडल के १२५ सूक्त के आठ मत्र रचे हैं। ये मत्र देवीसूक्त के नाम से प्रचलित हैं। हमारे देश मे जो दुर्गापाठ किया जाता है, उसके पहले इस देवी सूक्त के पाठ की विधि है। मार्कण्डेय पुराण का चडी-माहात्म्य-प्रकरण वाक्-प्रणीत इन्ही आठ मत्रो का भाव लेकर विस्तृत रूप से लिखा गया है। चडी-माहात्म्य के साथ-

साथ वाग्देवी का माहात्म्य सारे भारतवर्ष मे आज तक गाया जाता है ।

शकराचार्य ने जगत मे अद्वैतवाद के प्रवर्तक की प्रसिद्धि पाई है, लेकिन उनसे बहुत पहले वाग्देवी उस अद्वैतवाद के मूल-सूत्र का प्रचार कर गई है । जिस मत के ऊपर निभर करके शकराचार्य ने विश्वव्यापी बौद्ध-धर्म के चगुल से ब्राह्मण्य धर्म का उद्धार किया था, वह मत एकदम उनका निजस्व नही कहा जा सकता, उसकी सृष्टि करनेवाली वाग्देवी ही हैं। शकराचार्य के महत्व के लिये उन्हे हम जो गौरव देते हैं, उसके अधिकाश की वाग्देवी ही अधिकारी है ।

वाग्देवी अपने रचित मत्रो मे कहती हैं—

"मै रुद्र, वसु आदि इन सबके आत्मा के स्वरूप मे विचरती हूँ । मै ही उभयमित्र और वरुण, इद्र और अग्नि तथा अश्विनी-कुमारो को धारण करती हूँ । मै सब जगत् की ईश्वरी हूँ, मुझमे भूरि-भूरि प्राणी प्रविष्ट है । जीव जो देखता है, प्राण धारण करता है, अन्न का आहार करता है, सो सब मेरे ही द्वारा सपादित होता है । मेरी ही सेवा देवता और मनुष्य करते हैं । मै ही सब कामना किया करती हूँ । मै ही किसी को स्रष्टा, ऋषि या बुद्धिशाली कर सकती हूँ । स्तोत्रद्वेषी और हिंसक के वध के लिये मैने रुद्र के धनुष पर डोरी चढाई थी । मैंने ही भक्तो के उपकरार्थ शत्रु-पक्ष के साथ सग्राम किया है । मै स्वर्ग मे और पृथ्वी मे अनुप्रविष्ट हूँ । इस भूलोक के ऊपर स्थित आकाश को मै उत्पन्न करती हूँ । वायु जैसे अपनी इच्छा से चलता है, वैसे ही सपूर्ण भुवन

२. इद्रमातृका

ऋग्वेद-सहिता के दशम मडल के १५३ सूक्त की पाँच ऋक इद्रमातृका प्रणीत हैं। इद्र ऋषि के पिता ने बहुत से ब्याह किए थे। उनकी जिन पत्नियो ने एक साथ मिलकर इन ऋचाओ की रचना की थी, वे इद्रमातृका के नाम से प्रसिद्ध है। इनके पिता कश्यप ऋषि तथा माता अदिति थीं। इनमे से एक का नाम देवजामि था। सौते परस्पर ईर्ष्या-द्वेष भूलकर, एक मन होकर एक साथ मत्र-रचना करती थीं। सौतो के मिलन का यह दृश्य कितना सुदर और मधुर था।

इद्रमातृका इद्रदेव के उद्देश्य से कहती हैं—

"हे इद्र, जिस तेज से शत्रु जीता जाता है, वह तेज तुममे है, इसी से हम तुम्हारी पूजा करती हैं। तुमने वृत्र को मारा है, आकाश को विस्तृत किया है, अपनी क्षमता के बल से स्वर्ग को समुन्नत कर दिया है। सूर्य तुम्हारे सहचर है, तुम उन्हे बाहु-पाश से बाँधे हुए हो। इसी कारण हम तुम्हारी पूजा करती हैं।"

३. वाक्

अनृण ऋषि की कन्या वाक् ने ऋग्वेद-सहिता के दशम मडल के १२५ सूक्त के आठ मत्र रचे है। ये मत्र देवीसूक्त के नाम से प्रचलित है। हमारे देश मे जो दुर्गापाठ किया जाता है, उसके पहले इस देवी सूक्त के पाठ की विधि है। मार्कण्डेय पुराण का चडी-माहात्म्य-प्रकरण वाक्-प्रणीत इन्ही आठ मत्रो का भाव लेकर विस्तृत रूप से लिखा गया है। चडी-माहात्म्य के साथ-

साथ वाग्देवी का माहात्म्य सारे भारतवर्ष मे आज तक गाया जाता है ।

शकराचार्य ने जगत मे अद्वैतवाद के प्रवर्तक की प्रसिद्धि पाई है, लेकिन उनसे बहुत पहले वाग्देवी उस अद्वैतवाद के मूल-सूत्र का प्रचार कर गई है। जिस मत के ऊपर निर्भर करके शकराचार्य ने विश्वव्यापी बौद्ध-धर्म के चगुल से ब्राह्मण्य धर्म का उद्धार किया था, वह मत एकदम उनका निजस्व नही कहा जा सकता, उसकी सृष्टि करनेवाली वाग्देवी ही हैं। शकराचार्य के महत्व के लिये उन्हे हम जो गौरव देते हैं, उसके अधिकाश की वाग्देवी ही अधिकारी हैं ।

वाग्देवी अपने रचित मत्रो मे कहती हैं—

"मै रुद्र, वसु आदि इन सबके आत्मा के स्वरूप मे विचरती हूँ। मै ही उभयमित्र और वरुण, इद्र और अग्नि तथा अश्विनी-कुमारो को धारण करती हूँ। मै सब जगत् की ईश्वरी हूँ, मुझमे भूरि-भूरि प्राणी प्रविष्ट है। जीव जो देखता है, प्राण धारण करता है, अन्न का आहार करता है, सो सब मेरे ही द्वारा सपादित होता है। मेरी ही सेवा देवता और मनुष्य करते हैं। मै ही सब कामना किया करती हूँ। मै ही किसी को स्रष्टा, ऋषि या बुद्धिशाली कर सकती हूँ। स्तोत्रद्वेषी और हिसक के वध के लिये मैने रुद्र के धनुष पर डोरी चढाई थी। मैने ही भक्तो के उपकारार्थ शत्रु-पक्ष के साथ सग्राम किया है। मै स्वर्ग मे और पृथ्वी मे अनुप्रविष्ट हूँ। इस भूलोक के ऊपर स्थित आकाश को मै उत्पन्न करती हूँ। वायु जैसे अपनी इच्छा से चलता है, वैसे ही सपूर्ण भुवन

को उत्पन्न करनेवाली मै स्वय अपनी इच्छा के अनुसार सब काम करती हूँ। मेरे अपने माहात्म्य के बल से सब उत्पन्न हुए हैं।"

४. अपाला

अपाला भी विश्ववारा की तरह अत्रि के वश मे पैदा हुई थीं। इनका जीवन बहुत ही दु खमय था। यह त्वग्रोग से पीडित थी, इसी से स्वामी ने इन्हे त्याग दिया। स्वामी की त्यागी हुई यह नारी जीवन-भर पिता के तपोवन मे रहकर ईश्वर की आराधना करती रही।

लिखा है, अपाला के पिता के खेत अधिक उपजाऊ नहीं थे। अपाला ने इद्रदेव की आराधना करके वरदान प्राप्त किया, और इस तरह पिता के ऊसर खेतो को शस्य-पूर्ण बना दिया। यह बहुत ही पितृभक्त थीं। ऋग्वेद के आठवें मडल के ९१ सूक्त की आठ ऋचा अपाला द्वारा रची हुई हैं।

५. लोपामुद्रा

विदर्भराज की कन्या लोपामुद्रा अगस्त्य मुनि की पत्नी थी। अगस्त्य मुनि ने पितरो की आज्ञा से वश-रक्षा के लिये लोपामुद्रा के साथ विवाह किया था।

विंध्याचल जब बढकर आकाश को छूने लगा, और सूर्य-देव के रथ की राह रोककर उन्हे अचल करने को उद्यत हुआ, तब उस समय देवताओ की प्रार्थना से अगस्त्य ने एक

कौशल के द्वारा विंध्याचल को झुका दिया। देवताओ के अनुरोध से मुनि-श्रेष्ठ अगस्त्य एक दिन विंध्याचल के पास गए। विंध्याचल ने अतिथि ऋषि को देखकर प्रणाम करने के लिये अपना उन्नत मस्तक उनके चरणो मे झुका दिया। अगस्त्य ने आशीर्वाद देकर कहा—वत्स, जब तक मै लोटकर न आऊँ, तब तक तुम सिर न उठाना।

अगस्त्य ऋषि गए, तो फिर नही लौटे। विंध्याचल भी ऋषि की बात टालकर सिर नही उठा सका। इसी से हमारे देश मे अगस्त्य-यात्रा की कहावत कही जाती है। महीने के पहले दिन, यानी परेवा को, कही जाने से वह यात्रा अगस्त्य-यात्रा कहलाती है। उस दिन यात्रा करने से अगस्त्य की तरह फिर कोई नहीं लौटता, लोगो का ऐसा ही विश्वास है।

लोपामुद्रा का चरित्र बडा सुदर है। जैसे एक तरफ विद्या के गौरव से महीयसी है, वैसे ही दूसरी तरफ पतिव्रत-धर्म का अद्‍भुत आदर्श है। वह छाया की तरह स्वामी की अनुगामिनी थीं। जब स्वामी भोजन करते, तभी वह आहार करती, स्वामी सो जाते, तब वह शयन करती, और स्वामी के जगने के पहले ही उठ बैठती थी। उन्होने केवल पति को ही ज्ञान और ध्यान का विषय बना लिया था। अगस्त्य अगर किसी कारण से उन पर नाराज होते थे, तो लोपामुद्रा उस पर असतोष नही प्रकट करती थी। स्वामी के मनोरजन के लिये वह सदा उद्योग किया करती थीं। स्वामी की आज्ञा के विना वह कोई भी काम नहीं करती थी।

उनके समान निपुण सुगृहिणी भी शायद भारत मे और

कोई न थी। देवता, अतिथि और गोसेवा से वह कभी विमुख न होती थी।

लोपामुद्रा ने ऋग्वेद के प्रथम मडल के १७६ सूक्त की पहली और दूसरी ऋचा का सकलन किया है। इस ऋचा मे लोपामुद्रा स्वामी से कहती है—"हे प्रभु, सारा जीवन आपकी सेवा मे बिताकर अब मै थक गई हूँ। अब मै वृद्धा हूँ। मेरा शरीर जरा से जीर्ण हो गया है। तब भी आपकी सेवा ही मेरे जीवन का आनद है, और वही मेरी परम तपस्या है। आप ही मेरी एकमात्र गति है। हे प्रभु, मेरे ऊपर आपका अनुग्रह सदा अटल रहे।"

६. अदिति

ऋग्वेद-सहिता के चौथे मडल के अट्ठारहवें सूक्त की ५, ६ व ७ ऋचा अदिति की रचनाएँ हैं। अदिति इद्रदेव की माता के रूप मे प्रसिद्ध हैं। वामदेव ऋषि ने एक समय अपनी माता को क्लेश दिया था। पुत्र के द्वारा सताई गई अदिति भी इद्रदेव की शरण मे गई। लिखा है, अदितिदेवी ने कई मत्र रचकर वामदेव की अबाध्यता का दमन किया था।

अदिति की रची ऋचाएँ कविता की दृष्टि से भी श्रेष्ठ हैं। वह एक ऋचा मे कहती है—"जल से भरी नदियाँ अ-ल-ला यह स्पष्ट हर्ष-सूचक शब्द करती हुई जा रही है। हे ऋषि, तुम उनसे पूछो कि वे क्या कहती है।"

पुराण मे कहा है कि अदिति भगवान् कश्यप की पत्नी और इद्रादि देवगण की माता हैं। इनकी सौत दिति के लडके-

बाले दैत्यगण किसी समय अत्यत प्रबल हो उठे थे। उनमें प्रह्लाद के पोते विरोचन के पुत्र राजा बलि ने विश्वजित् यज्ञ करके स्वर्ग-राज्य पर अधिकार कर लिया। देवता वहाँ से निकाल दिए गए, और उनकी बड़ी दुर्दशा हुई। इससे देव-माता अदिति अत्यत दु खित होकर उसके प्रतिकार की इच्छा से स्वामी की शरण मे गई। भगवान् कश्यप ने उनसे कठिन पयोव्रत की दीक्षा लेकर विष्णु की आराधना करने का उपदेश दिया। उसके अनुसार अदिति ने एकाग्रचित्त होकर व्रत का उद्यापन किया। विष्णु ने प्रसन्न होकर उनके गर्भ से जन्म लिया, और उनका नाम वामन पडा। यज्ञोपवीत के समय वामनरूपी भगवान् 'भिक्षा' माँगने के लिये राजा बलि के पास गए। बलि ने उनकी प्रार्थना जाननी चाही। वामनजी ने सिर्फ तीन पग पृथ्वी माँगी। जब दाता ने उनकी यह मामूली प्रार्थना पूरी करने की प्रतिज्ञा कर ली, तब भगवान् अपने बौने शरीर को विराट् रूप मे बढाने लगे। उन्होने एक पग में पृथ्वी और दूसरे पग मे स्वर्ग नाप लिया। इनके शरीर मे चद्र-सूर्य-तारागण-सहित आकाश आ गया। तीसरे पग के लिये कोई भी जगह नहीं बची। राजा बलि उस समय मुश्किल मे पड गए। स्वर्ग और मृत्युलोक सब वामनजी ने नाप लिया। उन्होने तीन पग पृथ्वी देने की प्रतिज्ञा की है, किंतु केवल दो पग का स्थान दिया है, अभी तीसरा चरण बाकी है। अब तो और कुछ अवशिष्ट नहीं है, तीसरा पग रखने का स्थान कहाँ देंगे? उन्होने समझ लिया, भगवान् छलना करते हैं। अपना सिर सामने झुकाकर बलि ने कहा—

"स्वामी, मेरा मस्तक और पीठ बाकी है, उस पर पैर रखकर नाप लीजिए।"

बलि ने स्वर्ग, पृथ्वी सब दान कर दिया। इन दोनो स्थानो मे रहने का उन्हे अधिकार नहीं। उन्हे पाताल के भीतर जाना पडा। देवताओ को स्वर्ग का राज्य अनायास ही मिल गया।

७. यमी

यमी ने ऋग्वेद-सहिता के १० मडल के १० सूक्त की १, ३, ५, ७ और ११ ऋचाएँ और १५४ सूक्त की पाँच ऋचाएँ रची है। अधिकतर लोगो की धारणा है, यमराज भीषण हैं, भयकर हैं, किंतु यमी ने अपनी ऋचाओ मे यमराज को केवल पपियो को दड देनेवाला कहकर घोषित नहीं किया, बल्कि कहा है कि यमराज स्वर्ग-सुख के भी दाता हैं। १५४ सूक्त की ऋचाओ का भाव यह है—

"किसी-किसी प्रेत के लिये सोमरस क्षरित होता है, कोई-कोई घृत सेवन करते है। हे प्रेत! जिन प्रेतो के लिये मधुर स्रोत बहते रहते हैं, तुम उनके निकट जाओ।"

"जो तपोबल से अपराज्य हुए हे, जो तपस्या के बल से स्वर्ग गए है जिन्होने अति कठोर तपस्या की हे, प्रेत, तुम उनके निकट गमन करो।"

"जो रण-भूमि मे युद्ध करते है, जिन वीरो ने शरीर की माया-ममता त्याग दी है, या जो सहस्र-परिमित दक्षिणा व दान करते हे, हे प्रेत! तुम उनके निकट गमन करो।"

"जो सब प्राचीन व्यक्ति पुण्य कर्मों का अनुष्ठान करके पुण्यवान् हुए हैं, जिन्होने पुण्य का स्रोत बढाया है, जिन्होने तपस्या की है, हे यम ! यह प्रेत उनके निकट गमन करे।'

"जिन बुद्धिमान् व्यक्तियो ने हजारो तरह के सत्कर्मों की पद्धति दिखलाई है, जो सूर्य की रक्षा करते है, जिन्होने तप से उत्पन्न होकर तप ही किया है, हे यम ! यह प्रेत उन सब ऋषियो के निकट गमन करे।'

८. शश्वती

यह अगिरा ऋषि की कन्या और आसग नाम के राजा की पत्नी थी। इन्होने ऋग्वेद के अष्टम मडल के पहले सूक्त की ३४ ऋचाएँ रची है।

शश्वती के स्वामी आसग एक समय अग-हीन हो गए। शश्वती ने कठोर तप करके स्वामी को नीरोग किया। अपने रचे हुए उक्त मत्र मे उन्होने स्वामी की स्तुति की है।

९. उर्वशी

उर्वशी अप्सरा की कन्या है। इन्होने ऋग्वेद-सहिता के दशम मडल के ९५ सूक्त की सात ऋचाएँ रची हैं। इस सूक्त मे उर्वशी और पुरूरवा के उपाख्यान का वर्णन है। पुरूरवा और उर्वशी अप्सरा जब एक साथ एक जगह कुछ समय तक रहने के बाद एक दूसरे से अलग हुए है, उसी समय की बातें इस उपाख्यान मे वर्णन की गई है।

पुरूरवा कहते हैं—"प्रिये, तुम बडी ही निष्ठुर हो ! इतनी

जल्दी मुझे छोडकर न जाना। अपने साथ प्रेमालाप करने का कुछ अवसर मुझको भी दो। अगर इस समय मै अपने मन की बात न कह सका, तो सदा मुझे पछतावा रहेगा।"

उर्वशी उत्तर देती है— "पुरूरवा, तुम अपने घर को लौट जाओ। मै उषा की तरह तुम्हारे पास आई थी। वायु को जैसे कोई पकड नहीं सकता, वैसे ही तुम भी मुझे पकड-कर रख नहीं सकोगे। मेरे साथ प्रेमालाप करके क्या होगा ?"

पुरूरवा—"तुम्हारे विरह मे मेरे तरकस से बाण नहीं निकलते, मै युद्ध जय करके गउएँ नहीं ला सकता, मेरे राज्य मे वीर नही हैं, राज्य की शोभा चली गई है, मेरी सेना के सिपाही अब पहले की तरह हुकार के साथ युद्ध के लिये तैयार नहीं होते।"

पुरूरवा के असख्य कातर वचन सुनकर भी जब उर्वशी ने उन पर ध्यान नहीं दिया, तब पुरूरवा ने कहा—"तो पुरूरवा का शरीर आज गिर पडे, वह अब कभी न उठे, वह बहुत दूर-दूर हो जाय, वह निर्ऋति (मृत्यु) की गोद मे शयन करे, बलवान् वृक (भेडिए) उसे भक्षण कर ले।"

उर्वशी—"हे पुरूरवा, इस तरह मृत्यु की कामना मत करो, उच्छिन्न न हो (अर्थात् अपना सर्वनाश मत करो), दुर्दांत वृकगण तुम्हे भक्षण न करें। रमणी का प्रणय स्थायी नहीं होता। नारी का हृदय और वृक का हृदय—दोनो एक प्रकार के होते हैं। हे इलातनय पुरूरवा, सब देवता तुमको आशीर्वाद देते हैं—तुम मृत्यु को जीतनेवाले (अर्थात् अमर) बनो।"

पुरूरवा और उर्वशी के सबध मे पुराणो मे भी वर्णन है। स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी ब्रह्मशाप से मनुष्य-योनि मे उत्पन्न हुई, और यथासमय पुरूरवा की पत्नी होना उन्होने स्वीकार कर लिया। पुरूरवा चद्रमा के पुत्र बुध के बेटे थे। यह जैसे सुदर और प्रिय-दर्शन थे, वैसे ही विद्वान् और धार्मिक भी थे। उस समय पृथ्वी पर उनके समान क्षमाशील, सत्यनिष्ट मनुष्य दूसरा नहीं था। वेदविहित क्रियाकाड का अनुष्ठान करके उन्होने बहुत यश प्राप्त किया। पुरूरवा के रूप और गुणो पर रीझकर उर्वशी ने उन्हे अपना पति स्वीकार किया। किंतु विवाह के समय पुरूरवा को प्रतिज्ञा करनी पडी कि वह उर्वशी के सामने कभी एकदम नगे नहीं उपस्थित होगे। आत्मसयम मे भी उन्हे विशेष कठोरता धारण करनी पड़ेगी, उनकी पत्नी के पलँग के पास सदा दो मेष (भेड) बँधे रहेगे। उनके न रहने पर उर्वशी चली जायगी, दिन मे एक बार केवल घी पीकर राजा को रहना पडेगा। इन नियमो मे कुछ भी व्यतिक्रम पडने से उर्वशी उन्हे छोडकर गधर्वलोक को चली जायगी।

महामति पुरूरवा इन सब कठोर नियमो का पालन करके ५९ वर्ष तक उस विदुषी पत्नी के साथ अत्यत सयम से रहे। इधर गधर्वराज विश्वावसु ने उर्वशी को शाप से छुडाने का दृढ सकल्प किया। क्योकि उर्वशी के विना गधर्वलोक सूना हो रहा था। एक दिन रात के समय विश्वावसु आकर उर्वशी की शय्या के पास से उन दोनो मेषो को खोलकर ले चले। उन मेषो का शब्द सुनकर उर्वशी जग पडी। उन्होने पुरूरवा को कायर इत्यादि कटु वचन कहकर उत्तेजित किया, और

पुरूरवा नग्नावस्था मे ही पलँग से उठकर मेषो को छुडाने दौडे। कारण, वस्त्र-धारण करने मे समय लगता और फिर गधर्व का पीछा करना कठिन हो जाता। इसी समय गधर्वगण ने बिजली का प्रकाश कर दिया। उस प्रकाश मे उर्वशी ने स्वामी को नगे देख पाया। वह उसी घडी पुरूरवा के प्रतिज्ञा-भग से क्षुब्ध हो गधर्वलोक को चली गई। पुरूरवा पत्नी-शोक से अत्यत विह्वल होकर बहुत से स्थानो मे उवशी को खोजते रहे। अत को कुरुक्षेत्र के प्लक्ष तीर्थ मे दोनो की भेट हुई। उर्वशी ने पुरूरवा को अपने विरह मे मृतप्राय देखकर उनसे कहा कि तुम प्रयाग तीर्थ मे जाकर यज्ञ करो और गधर्वो को सतुष्ट करके मुझे प्राप्त करने का प्रयत्न करो। उवशी ने यह भी कहा कि वर्ष-भर के बाद एक दिन मै तुमसे मिलूँगी। पुरूरवा ने उर्वशी की सलाह के अनुसार यज्ञ किया, और उसके फल से उन्हे गधर्वलोक में जाने का अधिकार प्राप्त हुआ।

यह भी लिखा है कि पुरूरवा ने प्रयाग-तीर्थ मे प्रतिष्ठान-पुरी बसाकर राज्य स्थापित किया था, और उर्वशी के गर्भ से उनके परम प्रतापी छ पुत्र उत्पन्न हुए थे।

१० घोषा

यह कक्षावान् को कन्या थी। ऋग्वेद के दशम मडल के ३९ और ४० सूक्त इन्ही के रचे है। इन सूक्तो मे ब्रह्मवादिनी घोषा अश्विनीकुमारो को सबोधन करके कहती हैं—

"हे दोनो अश्विनीकुमार, आपका जो विश्व-भर मे विचरने-वाला रथ है, उसका नाम लेकर हम प्रतिदिन परम आनद

पाते हैं। आप हमें सुमधुर वाक्य-विन्यास की प्रवृत्ति दान करे, हम उसी के द्वारा आपकी वदना करे। आप लोगो के अनुग्रह से हमारे शुभ कर्म सपन्न हो—आप हमे सुबुद्धि दे। यज्ञ मे सोमरस जैसे आनद दान करता है, हम उसी तरह लोगो के लिये आनददायक हो।'

"एक क्वारी कन्या पिता के घर मे बूढी हो रही थी, आप लोगो ने ही अनुग्रह करके उसके लिये वर ला दिया। आप लोग जरा-जीर्ण, पगु, रोगी, अधे आदि के लिये एकमात्र अनत आश्रयस्वरूप है। आप लोगो ने ही जरा-जर्जर च्यवन ऋषि को फिरसे युवा बना दिया है, तुग्र-तनय को जल के ऊपर वहन करके तीर मे उतार दिया है। इसी कारण मै आपका आश्रय मॉगती हूँ। मै आपको प्रणाम करती हूँ, आवाहन करती हूँ। आप मेरे आवाहन को सुनिए। पिता जैसे पुत्र को शिक्षा देता है, वैसे ही आप लोग मुझे शिक्षा दें। मै ज्ञान और बुद्धि से हीन हूँ। ऐसा कीजिए, जिसमे कभी मेरी बुद्धि भ्रष्ट न हो।"

"शुन्धुव नाम की पुरुमित्र राजा की कन्या को रथ पर बिठाकर आप लोगो ने विमद के साथ उसका ब्याह कर दिया। वधीमती जब प्रसव-वेदना से पीडित हुई, तब आपने ही उसकी वह यत्रणा दूर कर दी। जरा-जीर्ण कलि को आपने नव-यौवन प्रदान किया। विपल्ला नाम की नारी, जिसके दोनो पैर कटे थे, उसको आपने ही चलने की शक्ति दी। शत्रुओ ने जब रेभक को मृतप्राय करके एक पर्वत की कदरा मे डाल दिया था, तब आपने ही उन्हे प्राण-दान दिया। अत्रि मुनि जब अग्नि-कुड मे फेंक दिए गए थे, तब आपने अग्नि का तेज हर लिया

था। हे दोनो अश्विनीकुमार, आपका नाम लेने से ही महा-पुण्य होता है। आप लोग जिस राह से जाते हैं, उस राह मे चारो ओर सबके कठ से आपकी वदना का गान सुन पडता है। ऋभु-नामक देवगण ने आपके लिये जो रथ बनाया है, जिस रथ के आकाश मार्ग मे उठने पर आकाश-कन्या उषादेवी का आविर्भाव होता है, और सूर्यदेव से दिन और रातें उत्पन्न होती है, उस मन से भी बढकर वेगशाली रथ पर सवार होकर आप लोग आवें। उस रथ पर चढकर पर्वत की ओर आप गमन करे—शयु-नामक व्यक्ति की बूढी गऊ को फिर दुग्धवती कर दे।"

"भृगु-सतान जैसे रथ बनाते हैं, मै भी उसी तरह आपके लिये यह मत्र रचती हूँ। विवाह के समय पिता जैसे कन्या को अलकारो से भूषित करता है, वैसे ही मै भी इन मत्रो को आपकी प्रशसा से अलकृत करती हूँ, हे अन्न-धन-सपन्न दोनो अश्विनीकुमार, आप लोग मुझ पर कृपा-दृष्टि करे—मेरे मन की अभिलाषा पूर्ण हो। आप लोग मेरे कल्याण के विधाता हैं, अतएव मेरे रक्षक हो। आप लोग यह आशीर्वाद दे कि मै पति के घर जाकर पति की प्यारी हो सकूँ।"

११. सूर्या

ऋग्वेद के दशम मडल का ८५ सूक्त सूर्या का रचा हुआ है। इसकी रचनाएँ नव-विवाहित वर-वधू की प्रार्थना और आशीर्वाद से परिपूर्ण है। उनका भावार्थ यह है—

"सूर्या के ब्याह के समय भी नर्भ नाम की ऋचाएँ सूर्या

की सहचरी थीं। नाराशसी नाम की ऋचाएँ उनकी दासी थीं। उनका मनोहर वस्त्र साम-गान के द्वारा पवित्र और उज्ज्वल था। उनका धर्ममय जीवन ही विवाह का यौतुक (दहेज) था। सुप्रशस्त मन ही उनके पति के घर आने की सवारी थी। अनत आकाश ऊपर का चँदोवा बना था।"

"हमारे मित्रगण ब्याह की पात्री (कन्या) खोजने के लिये जिस राह मे जाते है, वह निरापद् हो। हे इद्र आदि देवगण, पति और पत्नी का मिलन अक्षय हो।"

"इस कन्यारूप पवित्र पुष्प को पितृकुल के वृक्ष से तोड-कर पति के हाथ मे पहना दिया। हे इद्र, यह कन्या पति के घर मे सौभाग्यवती हो।"

"हे कन्या, पूषा (देवता) तुम्हारे हाथ पकडकर तुमको पिता के घर से पति के घर तक विना किसी विघ्न के ले जायँ। दोनो अश्विनीकुमार तुमको अपने रथ पर चढाकर पिता के घर से पति के घर ले जायँ। तुम पति के घर मे प्रशसा पाओ, और घर की मालकिन बनो।"

"जो लोग इन दपति (पति-पत्नी) के निकट शत्रुता के लिये आवें, वे विनष्ट हो। ये दपति के द्वारा विपत्ति को दूर करे, इनके निकट से शत्रु गण भाग खडे हो।"

"यह नव-विवाहिता वधू अति सुलक्षणा है। तुम सब मिल-कर आओ, इस वधू को देखो। यह वधू सौभाग्यवती हो, स्वामी को प्रिय हो—यह आशीर्वाद देकर तुम घर को लौटो।"

"हे दपति, तुम दोनो सदा एकत्र रहना—तुम्हारा मिलन कभी खडित न हो।"

"प्रजापति के आशीर्वाद से हमारे पुत्र-पौत्र आदि उत्पन्न हो। अर्यमा (देवता) हमे वृद्धावस्था तक सम्मिलित कर रक्खें। हे वधू, तुम कल्याण भागिनी होकर चिरकाल तक पति के घर मे रहो। दास-दासी, पशु आदि के साथ दया-पूर्ण व्यवहार रखना। उन्हे पुत्र के समान मानकर उनका पालन करना।"

"हे वधू, तुम्हारे दोनो नेत्र दोष-शून्य हो। तुम पति के लिये कल्याणदायिनी बनो। तुम्हारा मन सदा प्रफुल्ल रहे। तुम्हारा शरीर लावण्यमय बना रहे। देवताओ पर तुम्हारी अटल भक्ति बनी रहे।"

"इद्रादि देवगण पति और पत्नी के हृदय को एक कर दें, वायु, धाता और वाग्देवी उन्हे अच्छी तरह सम्मिलित कर दे, यही हमारी प्रार्थना है।"

नव-विवाहित वर-वधू की यह आशीर्वाद-भिक्षा और उनके हृदय की प्रार्थना उस किसी बहुत प्राचीन युग मे पहली बार ध्वनित हुई थी, इस समय भी हर तरफ, हर दिन उसी की प्रतिध्वनि उठकर सुनाई पडती है।

१२, १३. जुहू, इंद्राणी, शची, गोधा, श्रद्धा, रोमशा इत्यादि

ऊपर कही गई रमणियो के अलावा ऋग्वेद मे और भी अनेक विदुषी वेद-वादिनी स्त्रियो का उल्लेख पाया जाता है।

ऋग्वेद के दशम मडल का १०९ सूक्त बृहस्पति की भार्या

जुहू नाम की आर्य-महिला की रचना है। इस सूक्त मे सात मत्र है।

ऋग्वेद दशम मडल का १४५ सूक्त इद्राणी का रचा हुआ है। उसमे ६ मत्र हैं।

ऋग्वेद के दशवे मडल का १५९ सूक्त शची की रचना है। इसमे भी ६ मत्र है।

गोधा नाम की आर्य-महिला ने ऋग्वेद के दसवें मडल के १३४ सूक्त का सातवॉ मत्र रचा है।

श्रद्धा नाम की ब्रह्म-वादिनी रमणी ने ऋग्वेद-सहिता के पॉच मत्र रचे है। इन मत्रो मे यज्ञ-दान आदि कार्यों की महिमा गाई गई है।

रोमशा भावयव्य राजा की रानी थीं। ऋग्वेद-सहिता के प्रथम मडल के १२६ सूक्त की सातवीं ऋचा इन्होंने रची है। इनके पुत्र का नाम स्वनय था। स्वनय एक प्रसिद्ध दानी थे।

प्राचीन युग मे भारत मे हिंदू-सभ्यता की उन्नति बडे वेग से हो रही थी। जिस समय-प्रवाह के प्रारभ मे हमने रमणी विदुषी देखी है, वह प्रवाह जिस समय उच्छ्वास और तरगो से परिपूर्ण था, उस समय भी वे ही रमणियॉ ज्ञान और बुद्धि के गौरव से भूषित होकर हमारे सामने उपस्थित होती थीं। भारतवर्ष मे हिदू लोग जब दार्शनिक पडित हो रहे थे, उसी युग मे भी हम कई ऐसी रमणियो का पता पाते हैं, जो विद्या के गौरव मे पुरुषो के बराबर थीं।

शक्तिशाली पुरुष यहॉं भी अबला स्त्री-जाति को शिक्षा

के सवध मे हराकर उनसे ऊँचा आसन नही ले सके। स्त्रियाँ भी समान आग्रह, समान उत्साह और समान भाव से पुरुषो के साथ-ही-साथ उस ओर आगे बढ रही थी। इस युग मे हम मैत्रेयी, गार्गी आदि कई विश्व-विख्यात रमणियो का परिचय पाते है।

१४. मैत्रेयी

पहले मैत्रेयी का ही हाल लिखेगे। मैत्रेयी एक अत्यत प्रसिद्ध विदुषी थीं। बृहदारण्यक उपनिषद् मे इनकी विद्वत्ता का हाल लिखा है। यह मित्र ऋषि की कन्या थी। मित्र भी एक प्रसिद्ध पडित थे। उन्होने अपनी कन्या को बालपन से ही शिक्षित बना दिया था। युवावस्था मे महायोगी याज्ञवल्क्य के साथ इनका ब्याह हुआ।

बृहदारण्यक उपनिषद् के अनेक पृष्ठ मैत्रेयी के ज्ञान की ज्योति से प्रकाशमान हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य के साथ एक-एक दर्शन शास्त्र के जटिल, दुरूह तत्त्व को लेकर मैत्रेयी ने जिस तरह तर्क किए है, उन्हे पढने से वास्तव मे बडा ही विस्मय होता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य जिस समय गृहस्थाश्रम त्यागकर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का उद्योग कर रहे थे, उस समय मैत्रेयी के साथ उनका तर्क (बहस) हुआ। याज्ञवल्क्य के दो स्त्रियाँ थी। उनकी जो कुछ सपत्ति थी, उसे बाँट लेने के लिये उन्होने अपनी दोनो स्त्रियो से कहा। इसी बात से तर्क की उत्पत्ति हुई। तर्क मे मैत्रेयी ने ऐसा सुदर ढग और युवतियो

से विषय-सपत्ति का आसार होना प्रकट किया है कि उसे पढते समय आजकल के सभ्य जगत के श्रेष्ठ दार्शनिक पडित को भी आदर के साथ सिर झुकाना पडेगा। मैत्रेयी का यह अमूल्य वाक्य शास्त्र मे अमर है कि "यह धरणी अगर धन से परिपूर्ण होकर मेरे हस्तगत हो जाय, तो क्या मै उससे निर्वाण-पद (मोक्ष) पा सकूँगी ?"

मैत्रेयी के इस प्रश्न के उत्तर मे जब याज्ञवल्क्य ने कहा—"नही, यह न होगा", तब मैत्रेयी कह उठीं—

"येनाह नामृतास्या किमह तेन कुर्याम् ?"

अर्थात् जिससे मै अमृत प्राप्त न कर सकूँ अर्थात् अमर न हो सकूँ, उसे लेकर क्या करूँ ?

यह कैसी अमूल्य, गभीर, अमृतमयी वाणी नारी के मुख से निकली थी ? उसके बाद उस ब्रह्म-वादिनी विदुषी महिला ने हाथ जोडकर, ऊर्ध्वमुख होकर यह श्रेष्ठ प्रार्थना की—

"असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिगमय,
मृत्योर्माअमृत गमय, आविरावीम् एधि,
रुद्र ! यत्ते दक्षिण मुख तेन मा पाहि नित्यम् ।"

अर्थात् हे सत्यरूप ! तुम मुझे सब असत्यो से छुटकारा देकर अपने सत्यरूप मे पहुँचाओ। हे ज्ञानमय ! मोह के अधकार से मुझको निकालकर ज्ञान के प्रकाश मे ले जाओ। हे आनदरूप ! मृत्यु से निकालकर मुझे अमृत के पास पहुँचाओ। हे स्वयप्रकाश ! तुम मेरे निकट प्रकाशित होओ। हे रुद्ररूप ! तुम्हारा जो प्रसन्न कल्याणमय मुख है, उसके द्वारा सब जगह, सब समय मेरी रक्षा करो।

इस मनुष्य-हृदय की पुरातन व्याकुल प्रार्थना ने रमणी के कठ से निकलकर अत्यत रमणीयता प्राप्त की है। इस वाणी से भारत धन्य हो गया, और आज भी यह वाणी असख्य मनुष्यो को शाति प्रदान करती है।

१५. गार्गी

मैत्रेयी से भी बढकर विदुषी एक और रमणी थीं, उनका नाम था गार्गी। वह मैत्रेयी की ही आत्मीया थीं। गार्गी के पिता का नाम वचक्नु था।

किसी जटिल प्रश्न की मीमासा करने की आवश्यकता होने पर प्रसिद्ध दार्शनिक राजर्षि जनक सुप्रसिद्ध पडितो को बुलाकर समय-समय पर सभा करते थे। उसी सभा मे उस प्रश्न की आलोचना होती थी। उस आलोचना की सभा मे केवल पुरुषो के लिये ही स्थान न था, अनेक स्त्री-रत्न विदुषियाँ भी आती थीं, और प्रश्नोत्तर मे भाग लेती थीं। पुरुषो के साथ स्त्रियाँ भी बराबर तर्क करती थीं।

एक समय राजर्षि ने एक यज्ञ किया। उस यज्ञ मे देने के लिये उन्होने एक सहस्त्र गउएँ बाँध दी थीं। हरएक गऊ के सींगों मे दस-दस सोने की मोहरें बँधी हुई थी। इस महायज्ञ मे अनेक देशो से, निमत्रण पाकर, बडे-बडे पडित आए थे।

यज्ञ के अत मे राजर्षि जनक ने आई हुई पडित-मडली को सबोधन करके कहा—आप लोगो मे जो सबसे बढकर ब्रह्मज्ञ हो, उन्ही के लिये ये सुवर्ण-मुद्रा-सहित गउएँ बँधी हैं।

सभा मे बैठे हुए लोगो मे से किसी को उठकर वे गउएँ

लेने का साहस न हुआ, क्योकि रार्जाष ने बडी कठिन बात कही थी। असख्य विद्वानो की उस भीड मे सबसे बढकर ब्रह्मज्ञ होने का दावा करना कुछ साधारण बात न थी। कौन साहस करता ?

जब कोई नही उठा, तब महर्षि याज्ञवल्क्य उन हजारो गउओ को लेने के लिये उद्यत हुए। यह सभी लोग स्वीकार करते थे कि ज्ञान और विद्या मे याज्ञवल्क्य ऋषि सबसे श्रेष्ठ है। और, इसके लिये याज्ञवल्क्य को भी एक तरह का अभिमान था। याज्ञवल्क्य की स्पर्धा देखकर पडित-मडली चचल हो उठी। कानाफूसी होने लगी, लेकिन प्रतिवाद का साहस किसी को न हुआ।

उस सभा के एक कोने मे एक रमणी भी बैठी थीं। याज्ञवल्क्य की ढिठाई उन्हे असह्य हो उठी। वह आसन से उठकर खडी हो गई। सबकी नजर उन पर पडी। वह गार्गी थीं। याज्ञवल्क्य की ओर देखकर उन्होने तेजस्वी भाषा मे पूछा— हे ब्राह्मण ! तुम क्या इस पडित-मडली के बीच सबसे बढकर ब्रह्मज्ञ हो ?

याज्ञवल्क्य ने दृढ स्वर से उत्तर दिया—हॉ।

गार्गी ने कहा—हाँ, केवल कह देने से न होगा। उसका प्रमाण देना होगा।

तब एक महा तर्क छिड गया। गार्गी ने तरह-तरह के शास्त्रीय प्रश्न करके याज्ञवल्क्य की परीक्षा शुरू कर दी। ब्रह्म के सबध मे कितने ही कूट तर्क उठाए गए। ब्राह्मण-कुमारी गार्गी के प्रश्न-बाण याज्ञवल्क्य मुनि को बेधने लगे। सभा

मे स्थित पडित-मडली महाविस्मय के साथ वह शास्त्रार्थ सुनने लगी। सब लोग मन-ही-मन गार्गी के पाडित्य और उससे बढकर साहस की प्रशसा करके धन्य-धन्य के शब्दो से उनके गौरव व विद्वत्ता की घोषणा करने लगे।

१६. देवहूति

एक और प्रसिद्ध रमणी की कथा पुराणो मे मिलती है। इनका नाम देवहूति था। यह राजा स्वायभुव मनु की कन्या थीं। इनकी माता का नाम शतरूपा था। प्रियव्रत और उत्तान-पाद नाम के दो प्रसिद्ध राजा देवहूति के भाई थे। उस समय कर्दम नाम के एक ऋषि ज्ञान, विद्या, बुद्धि आदि के लिये विशेष विख्यात थे। देवहूति की अभिलाषा हुई कि उन्ही को अपना पति बनावें। ज्ञान और विद्या प्राप्त करने की चाह से देवहूति ने राजकन्या होकर भी उन दरिद्र ऋषि को अपना स्वामी बनाना चाहा। शिक्षा के ऊपर उनका अनुराग ऐसा ही प्रबल था।

राजा स्वायभुव विवाह-प्रस्ताव लेकर कर्दम ऋषि के पास उपस्थित हुए। कर्दम उस समय ब्रह्मचर्य समाप्त करके गृहस्था-श्रम मे प्रवेश करने के उद्योग मे थे। देवहूति-सरीखी श्रेष्ठ रमणी को अनायास पाकर उन्होने अपने को कृतार्थ समझा।

देवहूति पिता के घर का ऐश्वर्य छोडकर स्वामी के साथ वनवासिनी हुई। दिन-दिन उनकी विद्या-लाभ की लालसा प्रबल हो उठने लगी। उनके स्वामी कर्दम उनकी इस लालसा को पूर्ण करने में कुछ भी कुठित नहीं हुए। उनके ज्ञान-भडार

मे जो कुछ था, सो उन्होने सब अपनी पत्नी को दे दिया। निर्जन वन में स्वामी के चरणो के पास बैठकर देवहूति ब्रह्म-चारिणी की तरह एकाग्र मन से शिक्षा प्राप्त करने लगीं। शिक्षा के साथ-साथ उनकी मानसदृष्टि के आगे जगत् की ही विचित्र समस्याएँ चित्रित होने लगीं। चिंताशीला रमणी उन समस्याओ की पूर्ति के लिये प्राण-पण से चेष्टा करने लगी।

देवहूति के गर्भ से कर्दम के नौ कन्याएँ पैदा हुई। उनमे अरुधती और अनसूया विशेष प्रसिद्ध है। अरुधती वशिष्ठ की और अनसूया अत्रि ऋषि की पत्नी थीं। पतिव्रताओ मे दोनो अद्वितीय थी। विवाह-मत्र मे उक्ति है कि विवाह के समय कन्या कहे—"अरुधती, मेरी यही प्रार्थना है कि मै तुम्हारी तरह अपने स्वामी पर अनुरक्त रहूँ।" अनसूया भी अपनी अरुधती की तरह सर्वगुण-गणालकृता थीं।

साख्य-दर्शन के रचनेवाले मुनि भी इन्हीं देवहूति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। कपिल मुनि ही दर्शन-शास्त्र की चर्चा के जन्म-दाता हैं। उन्होने ही पहले-पहल ज्ञान की प्रकाश-पूर्ण ज्योति लेकर मनुष्य के अधकार से आच्छन्न मन के निगूढ तत्त्वो की खोज की, सूक्ष्म दृष्टि से मनुष्य के अत करण का विश्लेषण करके देखा। उन्होने ही यह आलोचना पहले-पहल की कि दु ख और शाति का बीच कहॉ छिपा हुआ है। उन्होने ही पहले-पहल आविष्कार किया कि उस दुख के बीज का ध्वस किस तरह किया जा सकता है, किस तरह मनुष्य को मुक्ति मिलती है।

किंतु कपिल के इस शिक्षालाभ के मूल में कौन वर्तमान

है ? किसने उनके क्षुद्र दृष्टि को जगत् की व्यापकता में फैलाया ? मनुष्य के हृदय के भीतर के तत्त्व खोजने की प्रवृत्ति को किसने कपिल के हृदय में जगाया ? उनकी जननी देवहूति ने ही। ऐसी माता अगर न मिलती, तो शायद कपिलदेव हमें साख्याचार्य के रूप मे न देख पडते।

देवहूति ने अपने पुत्र कपिलदेव को स्वयम् प्राथमिक शिक्षा दी थी। कपिल को अपनी चिंता-प्रवाह को किधर बहाना चाहिए, यह भी उन्होने ही बता दिया था। देवहूति की ज्ञान-पिपासा इतनी प्रबल थी कि स्वामी के चले जाने पर उन्होने अपने पुत्र कपिलदेव के साथ ज्ञान-चर्चा करके उनके नवप्रचारित साख्य दर्शन का बराबर अनुशीलन किया। जिस दर्शन शास्त्र का अमूल्य बीज देवहूति ने पति की आराधना से प्राप्त किया था, उसे उन्होने पुत्र की सहायता से पत्ते, फूल और फलो से शोभित करके छोडा।

१७. मदालसा

मदालसा ऐसी विदुषी माता थीं कि उन्होने शिक्षा द्वारा अपने पुत्रो को महान् बना दिया। मदालसा गधर्व-कन्या थीं, और ऋतध्वज राजा के साथ उनका ब्याह हुआ था। मदालसा विदुषी ही नहीं, महासती और ज्ञानवत भी थीं। उनके चार पुत्र थे—विक्रॉत, सुबाहु, शत्रु मर्दन और अलर्क। पुत्रो को वह स्वय शिक्षा देती थीं। उनसे उपदेश पाकर विक्रात, सुबाहु और शत्रु मर्दन तो ससार से विरक्त सन्यास व्रतधारी हो गए। चौथे पुत्र अलर्क महाप्रतापी सम्राट् हुए। उन्होने किस

तरह पुत्रो का चरित्र उन्नत बनाया था, इसका कुछ आभास नीचे लिखी घटना से मिल जायगा ।

मदालसा के बडे बेटे विक्रात को एक दिन कई लडको ने मारा । वह रोते हुए मा के पास आकर कहने लगे—माता, कई बालको ने मुझे मारा है । मै राजपुत्र हूँ, वे प्रजा की सतान हैं । मै इतने सम्मान का पात्र हूँ, तो भी वे साधारण मनुष्य मुझे मारे । इतनी उनकी मजाल ! तुम इसका उपाय करो ।

मदालसा ने यह सुनकर पुत्र को समझाया—बेटा, तुम शुद्ध आत्मा हो । आत्मा की प्रकृति कभी नाम-रूप आदि उपाधियों से कलुषित नही होती । तुम्हारा 'विक्रात' नाम अथवा 'राजपुत्र' की उपाधि असल चीज नहीं है, वह केवल कल्पित-मात्र है । अतएव राजपुत्र होने का अभिमान करना तुम्हे नहीं सोहता । तुम्हारा यह देख पड रहा शरीर पचतत्त्व का बना है । तुम यह देह नहीं हो, फिर देह के विकार मे रो क्यो रहे हो ? तुम्हारा आचरण यथा नाम होना चाहिये ।

रानी की शिक्षा के प्रभाव से जब तीन पुत्र ससार-त्यागी हो गए, तब राजा ऋतध्वज ने चिंतित होकर मदालसा से कहा—मदालसा, तीन पुत्रो को तो तुमने ससार से विरक्त वनवासी बना दिया, अब छोटा लडका, जिसमे अपने तीनो भाइयो का अनुगामी न हो, वही करो । वह भी अगर सन्यासी हो गया, तो फिर राज्य का सचालन कौन करेगा ?

मदालसा ने स्वामी की आज्ञा से छोटे लडके को, जिसका नाम अलर्क था, राजनीति की शिक्षा देना शुरू किया । उनके

वे उपदेश पढने से यह अच्छी तरह समझ मे आ जाता है कि राजनीति मे भी उनकी विलक्षण गति थी।

मार्कंडेयपुराण मे ऋतध्वज और मदालसा के सबध मे एक उपाख्यान पाया जाता है।

दैत्यो और दानवो के असीम उत्पात से गालव ऋषि के तप मे विघ्न पड रहा था। यह खबर पाकर शत्रुजित् राजा के पुत्र ऋतध्वज ऋषि की सहायता के लिये उनके आश्रम मे गए। एक दिन जिस समय गालव ईश्वर की आराधना मे लगे थे, उसी समय एक दानव विघ्न डालने के लिये सुअर का रूप धरकर उस आश्रम मे उपस्थित हुआ। राजकुमार ऋतध्वज ने उसे देखकर धनुष पर बाण चढाया, और नाराच मारकर उसे घायल भी कर दिया। सुअर प्राणो के भय से भाग खडा हुआ, और ऋतध्वज भी कुवलय नाम के घोडे पर सवार होकर उसके पीछे चले। सुअर सहस्रो योजन भागता ही गया, राजकुमार ने भी पीछा न छोडा। अत को वह शूकररूपी दानव एक गढे मे घुसकर गायब हो गया। ऋतध्वज भी गढे मे घुसे चले गए।

गढे मे घोर अधकार था। बहुत देर तक उस अँधेरे के भीतर चलकर अत को ऋतध्वज प्रकाश मे पहुँचे। देखा, सामने इद्रपुरी को मात करनेवाले सैकडो महल जगमगा रहे हैं। एक अपूर्व पुरी है। चारो ओर दीवार से घिरी हुई है। वह सुअर का पीछा करते-करते एक ऐसी जगह पहुँच गए, जिसका उन्होने सपने मे भी अनुमान न किया था। एक महल के भीतर पहुँचकर उन्होने देखा, सखियो के बीच एक कृशतनु

(६२३८) (३१)
(पु०।का।७१)

अपूर्व सुदरी विराजमान है। ऋतध्वज को देखते ही वह सुदरी-शिरोमणि मूर्च्छित हो गई।

सखियो की सेवा से जब उस रमणी को चेत हुआ, तब राजपुत्र ने उनका परिचय पूछा। एक सखो ने कहा—यह गधर्वराज विश्वावसु की कन्या मदालसा हैं। यह एक दिन बाग मे सैर कर रही थी कि इसी समय वज्रकेतु दानव का पुत्र पातालकेतु अधकारमयो माया फैलाकर इन्हे हर लाया। उसी ने ब्याह करने की आशा से इनको यहाँ कैद कर रक्खा है।

सखी जब गधर्वकुमारी का परिचय दे चुकी, तब उसने फिर राजकुमार से पूछा—आप कौन हैं? और किस तरह इस पातालपुरी में आए हैं? ऋतध्वज ने आदि से अत तक सब हाल कह सुनाया। सखी ने फिर कहा—तो आप इस पाताल-पुरी से निकलकर मेरी सखी मदालसा को पातालकेतु दानव के चगुल से छुडाइए। यह आपके ऊपर अनुरक्त भी हो गई है। देवकन्यारूपिणी मदालसा को पत्नी-रूप में पाकर कौन अपने को सौभाग्यशाली न समझेगा? और आप भी मेरी सखी के सब तरह योग्य वर है।

ऋतध्वज मदालसा से गधर्व विवाह करके उनके साथ पातालपुरी से बाहर निकलने लगे। राह मे दैत्यो ने उन पर हमला किया। अत्यत घोर युद्ध ठन गया। ऋतध्वज ने अकेले सब दानवो को मार डाला, और जय-लाभ करके पत्नी के साथ निर्विघ्न रूप से पिता के राज्य मे लौट आए। ऋतध्वज के पिता शत्रुजित् और सब नगर-निवासियो ने बडे आनद से वर-वधू को ग्रहण किया।

कुछ समय के बाद ऋतध्वज पिता की आज्ञा से ऋषियो के तप की रक्षा के लिये फिर घर से बाहर निकले, और घूमते-घामते यमुना-तट पर पहुँचे। वहाँ पातालकेतु का छोटा भाई तालकेतु माया-बल से मुनि का रूप रखकर एक आश्रम मे रहता था। तालकेतु ऋतध्वज को देखते ही पहचान गया कि यही मेरे भाई का बैरी है। उसने बदला लेने के लिये एक कौशल से काम लिया। उसने ऋतध्वज के पास आकर कहा—"राजकुमार, आप ऋषियो की तपोरक्षा मे नियुक्त हैं। मैने एक यज्ञ के अमुष्ठान का सकल्प किया है, किंतु दक्षिणा देने की क्षमता न होने के कारण मै उस सकल्प को कार्य-रूप मे परिणत नहीं कर पाता। आप अपने गले का यह रत्न-हार अगर मुझे दे दें, तो उससे मेरी बहुत दिनो की अभिलाषा पूरी हो जाय।"

यह सुनकर ऋतध्वज ने उसी दम गले से रत्नो का हार उतार दिया। छद्मवेशी हार पाकर कहने लगा—मै अब जल के भीतर प्रवेश करके वरुणदेव की आराधना करूँगा। जब तक लौटकर मै न आऊँ, तब तक मेरे आश्रम की रक्षा कीजिए।

तालकेतु को बातो पर ऋतध्वज को कुछ सदेह नहीं हुआ, वह उसी आश्रम मे रहने लगे। उधर तालकेतु वह हार लेकर राजा शत्रुजित् के राज्य मे पहुँचा, और वही हार दिखाकर यह प्रचार कर दिया कि दानवो के साथ युद्ध मे ऋतध्वज मारे गए। इस दारुण सवाद को सुनकर पतिव्रता मदालसा सुनते ही बेहोश हो गई, और फिर न उठीं।

तब तालकेतु ने लौटकर यमुना-तट पर आकर राजकुमार

से कहा—युवराज, मेरा यज्ञ समाप्त हो गया, आप जहाँ चाहे, जा सकते है ! मेरा बहुत दिनो का मनोरथ आपने पूरा किया, आपका मगल हो ।

ऋतध्वज ने राजधानी मे लौट आकर सब हाल सुना । मदालसा इस लोक मे नहीं है, स्वामी की मृत्यु की खबर पाते ही उसने प्राण त्याग दिए, इस शोक से ऋतध्वज विह्वल हो गए, और "मदालसा मेरे मरने की खबर पाकर मर गई, और मै उसके विना अब तक जीता हूँ ! मुझे धिक्कार है !" यो कहकर विलाप करने लगे ।

ऋतध्वज की यह दशा देखकर उनके बधु नागराज के पुत्रो ने इसके प्रतिकार की चेष्टा शुरू की । मदालसा के साथ जिसमे ऋतध्वज का फिर मिलन हो, इसके लिये ऋतध्वज के पिता ने स्वयम् नागराज से अनुरोध किया । नागराज ने हिमालय पर जाकर घोर तप किया । तपस्या से सरस्वती और महादेव को सतुष्ट करके उन्होने यह वर प्राप्त किया कि मदालसा जिस अवस्था मे मरी है, ठीक उसी अवस्था में वह नागराज की कन्या होकर नागराज के घर उत्पन्न होगी ।

महादेव और सरस्वती के वरदान मे मदालसा जैसी थी, ठीक वैसी ही होकर नागराज के घर पैदा हुई । उसके बाद एक दिन नागराज ने नागपुरी में ऋतध्वज का निमत्रणकरके मदालसा से उन्हें मिला दिया ।

१८. आत्रेयी

आत्रेयी प्राचीन भारत की एक श्रेष्ठ विदुषी रमणी है ।

मालूम नही, उन्होने किसी ग्रथ की रचना की या नहीं, लेकिन ज्ञानोपार्जन के बारे मे इनके जैसे गभीर अनुराग और अदम्य अध्यवसाय का परिचय पाया जाता है, वह अनुपम है । इनकी उक्त बात का दृष्टात जगत्-भर मे विरला ही होगा ।

प्राचीन वेदाध्यापक महाकवि वाल्मीकि को उपयुक्त गुरु समझकर यह रमणी पहले उनसे वेद-वेदाग, उपनिषद् आदि शास्त्र पढने गई , और वहाँ कुछ समय तक कठिन परिश्रम के साथ शास्त्राभ्यास भी किया । लेकिन जब सीतादेवी के यमज पुत्र लव कुश महर्षि के निकट पढने-लिखने लगे, तब आत्रेयी देवी को विशेष असुविधा हुई । लव-कुश की प्रतिभा ऐसी अद्भुत थी कि बारह वर्ष की अवस्था पूरी होने के पहले ही वे बहुत से शास्त्रों का अध्ययन करके ऋक, यजु व साम वेदो मे विशेष व्युत्पन्न हो गए । उस सुकुमार बाल्यावस्था मे ही वे महर्षि प्रणीत रामायण नाम का बृहत् महाकाव्य आदि से अत तक कठ कर चुके थे । इन दोनो तीक्ष्ण-बुद्धि बालको को पाकर शायद महर्षि भी अपने अन्य शिष्यो और शिष्याओ को शिक्षा देने मे कुछ शिथिल-प्रयत्न हो गए । इसी कारण आत्रेयी ने वाल्मीकि के आश्रम मे अपनी ज्ञान-पिपासा मिटने का वैसा सुयोग नहीं देख पाया । लव-कुश की प्रदीप्त प्रतिभा के आगे उन्हे अपनी मानसिक शक्ति अत्यत हीन जान पडी । उनके साथ पाठ पढकर वह समान भाव से उनके साथ आगे नही बढ सकीं । इसी से भग्नहृदय होकर, महर्षि का आश्रम छोड, चल दीं । उनकी ज्ञान-पिपासा इतनी प्रबल थी कि वह तनिक भी विलब न करके उपयुक्त गुरु की खोज मे निकल पडीं । उस

समय अनेक वेदज्ञ पडित दक्षिण-भारत को अलकृत किए हुए थे। उसमे महामुनि अगस्त्य ही सर्वश्रेष्ठ थे। आत्रेयी ने उपनिषद् आदि पढने के लिये उनके पास जाने का दृढ सकल्प किया।

स्त्री के लिये उस समय उस कई योजन दूर पर स्थित अगस्त्य के आश्रम मे जाना कोई साधारण बात नही थी। उस समय रेल या सवारी कौन कहे, अच्छी और सीधी राह भी न होगी। लेकिन उस ब्रह्मचारिणी को अनन्य ज्ञानस्पृहा के आगे कोई विघ्न-बाधा अथवा क्लेश नहीं टिक सका। असहाय रमणी अकेली पैदल चल दी। कितने ही जनपद, नद-नदी, पर्वत और विशाल दडकारण्य नॉघकर बहुत दिनो बाद आत्रेयी अगस्त्य के आश्रम मे पहुँचीं।

लिखा है, महर्षि अगस्त्य इस रमणी की अद्भुत ज्ञानस्पृहा और अदम्य अध्यवसाय देखकर एकदम मुग्ध हो गए। उन्होने कन्या की तरह स्नेह से आत्रेयी को आश्रम मे रक्खा और यत्न के साथ शिक्षा दी। उनके यो आग्रह-सहित पढाने से आत्रेयी का भी मनोरथ पूरा हुआ, और वह भारत मे एक श्रेष्ठ विदुषी के नाम से परिचित हुई।

१९. भारती

भगवान् शकराचार्य जिस समय बढे हुए बौद्ध-धर्म के ग्रास से आर्य-धर्म बचाने की चेष्टा कर रहे थे, जिस समय वह सिंधु-उपकूल से हिमालय तक सब देशो मे शिष्यो-सहित जाकर अपने मत की स्थापना और दिग्विजय कर रहे थे, उस समय

उस कार्य मे एक रमणी ने भी उनकी सहायता की थी। वह विदुषी रमणी मडन मिश्र की पत्नी भारती थी। कोई-कोई इन्हे उभयभारती भी कहते है। यह रमणी महाविदुषी थी।

सुना जाता है, बचपन मे इनकी बुद्धि की तेजी और बहु-मुखी प्रतिभा देखकर सब विस्मित हो जाते थे। इन्होने सोलह वर्ष की अवस्था मे ही चारो वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छद, और ज्योतिष ये छहो वेदाग, न्याय, साख्य, पातजल, वेदात मीमासा और वैशेषिक—ये छहो दर्शन, धर्मशास्त्र, पुराण उप-पुराण, काव्य, नाटक, अलकार, इतिहास आदि अनेक शास्त्र पढकर असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया था। लोग इन्हे साक्षात् सरस्वती समझते थे। इनका कठ-स्वर बडा ही मधुर था—इसी से इनका एक नाम सरसवाणी भी था।

एक समय शकराचार्य मडन मिश्र के घर पहुँचे। उनके साथ शकराचार्य का शास्त्रार्थ होने लगा। उस शास्त्रार्थ के पहले शकराचार्य ने प्रतिज्ञा की कि अगर मै तर्क मे हार जाऊँगा, तो मडन मिश्र का शिष्य होकर गृहस्थाश्रम ग्रहण करूँगा। मडन मिश्र ने भी प्रतिज्ञा की कि अगर मै शास्त्रार्थ मे हार जाऊँगा, तो गृहस्थाश्रम छोड शकराचार्य का शिष्य होकर सन्यास धर्म ग्रहण करूँगा। दोनो ही विद्वान् अगाध पडित थे। उनका शास्त्रार्थ साधारण न था। दो दल के दो प्रधान पडितो का शास्त्रार्थ ठहरा—उस शास्त्रार्थ का विचार करनेवाला असाधारण पडित होना चाहिए। इतना बडा पडित कौन मिले ?

किंतु मध्यस्थ के लिये दूर नहीं जाना पडा। मडन मिश्र

की स्त्री भारतीदेवी को ही दोनो ने मध्यस्थ मजूर कर लिया। उन्होने भी यह महासम्मान का पद स्वीकार कर लिया, और न्याय के साथ उसका निर्वाह किया। इसी बात से समझा जा सकता है कि वह कितनी बडी विदुषी थीं !

शास्त्रार्थ होने लगा। भारती जयमाला हाथ मे लिए बैठी हुई सुनने लगीं। वह माला किसके गले मे पहनावेगी, कौन वह माला पाने के योग्य है, इसी की धीर भाव से निष्पत्ति करने लगीं। योग्य पात्र के ऊपर ही विचार का भार दिया गया था। भारती ने विचार मे पति का बिलकुल पक्षपात नहीं किया। वह जिस पद पर बिठाई गई थीं, वह बडे महत्त्व का था। भारती ने देखा, उनके स्वामी शास्त्रार्थ मे हार गए। उन्होने विना सोच-विचार के वह जयमाला शकराचार्यजी के गले मे डाल दी।

स्वामी को पराजित देखकर भारती ने शकराचार्य से कहा—मेरे पति अवश्य हार गए, लेकिन मै अभी बाकी हूँ। पुरुष का आधा अग स्त्री होती है। मुझे भी शास्त्रार्थ मे जीतकर आप विजयी हो सकेंगे। स्त्री के मुख से ये वचन सुनकर शकराचार्य को बडा विस्मय हुआ। रमणी भुवन-विजयी शकराचार्य से शास्त्रार्थ करना चाहती है।

खैर, भारती से भी शकराचार्य का शास्त्रार्थ शुरू हो गया। भारती प्रश्न करने लगीं, और शकराचार्य उनका उत्तर देने लगे। शकराचार्य भी जो शास्त्रीय जटिल समस्या उपस्थित करते थे, उसे भारती सुलझाती थीं। इस तरह दिनोरात एक महीना सात दिन तक यह अद्भुत शास्त्रार्थ होता रहा।

भारती किसी तरह बद नहीं हुई, वह जैसे शकराचार्य को जीतने का प्रण कर बैठी थीं। शकराचार्य उनके पाडित्य, धैर्य, अध्यवसाय और शास्त्र-ज्ञान को देखकर अचभे मे आ गए। उन्होने अपने मन मे कहा, अब तक अनेक पडितो से शास्त्राथ किया है, मगर ऐसी तर्क-शैली और कोटिक्रम कही नही देखा।

किसी-किसी का मत है कि अत को भारती ने बाल-ब्रह्मचारी शकराचार्य को काम-कला-सबधी प्रश्न करके चुप कर दिया। कारण वह इस शास्त्र से बिलकुल अनभिज्ञ थे।

कुछ लोगो का मत है कि शकराचार्य ने कुछ समय लेकर योग-बल से अन्य शरीर धारण कर, काम-कला-सबधी ज्ञान प्राप्त किया, और भारती के प्रश्नो का उत्तर दे दिया। इस तरह भारती को भी उनसे हार माननी पडी। खैर, जो कुछ हो, शास्त्रार्थ समाप्त हुआ, भारती किसी तरह शकराचार्य को परास्त नही कर सकीं। तब मडन मिश्र अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार शकराचार्य के शिष्य ससार-त्यागी हो गए। पतिव्रता भारती भी ससार त्यागकर पति की अनुगामिनी हुई।

शकराचार्य ने तर्क मे जय-लाभ करके केवल मडन मिश्र-ऐसे विद्वान् को ही नहीं पाया, साथ ही विदुषी भारती को भी प्राप्त किया। शकराचार्य ने जिस महाकार्य का भार अपने ऊपर लिया था, उसे पूर्ण करने के लिये भारती के समान रमणी की विशेष आवश्यकता थी। भारती ने तन्मय होकर शकराचार्य के कार्य आर्य-धर्म की रक्षा मे सहायता पहुँचाई। भारती-स विदुषी रमणी को न पाते, तो शायद शकराचार्य के अनेक कार्य असपूर्ण ही रह जाते।

२० . लीलावती

लीलावती का नाम भारत मे ही नही, सारे जगत् मे प्रसिद्ध है। लीलावती पडितवर श्रेष्ठ ज्योतिषी भास्कराचार्य को कन्या थी। लीलावती थोडी ही अवस्था मे विधवा हो गई थी। उनके विधवा होने के बारे मे एक घटना प्रसिद्ध है।

लीलावती के पिता भास्कराचार्य ज्योतिष-शास्त्र के असाधारण पडित थे। उन्होने कन्या का भाग्य-फल ज्योतिष से विचारकर जाना कि लीलावती ब्याह होने के कुछ दिन बाद ही विधवा हो जायँगी। वह ज्योतिषी पडित थे, ज्योतिष की सभी बाते जानते थे। गणित करके ऐसा लग्न खोजने लगे, जिसमे ब्याह होने से कन्या कभी विधवा नहीं हो सकती। अभ्रात रूप से उस शुभ लग्न का समय ठीक करने के लिये उन्होने एक छोटे पात्र मे छेद करके पानी के ऊपर छोड दिया। छेद की राह से जल भरते-भरते जिस घडी वह पात्र पानी मे डूब जायगा, वही उस शुभ लग्न का समय होगा—यह निश्चित हुआ था। क्योकि उस समय प्राय इसी तरह धूप-घडी, जल-घडी आदि से समय निश्चित होता था। मनुष्य ने कौशल और विद्या-बुद्धि के बल से विधाता के लिखे को निष्फल करना चाहा, लेकिन वह चेष्टा विधाता के अमोघ विधान से व्यर्थ हो गई।

लीलावती बालिका थी, उन्हे कौतूहल होना स्वाभाविक ही था। वह उस पात्र के डूबने का दृश्य कौतूहल के साथ देख रही थी। उस समय वह ब्याह की पोशाक पहने थीं, उनके

सिर पर मोतियो से सुशोभित आभूषण था। वह झुककर जैसे उस अर्धमग्न पात्र को देखने लगी, वैसे ही एक छोटा-सा मोती उस पात्र मे गिर गया, और उससे पात्र का छेद बद हो गया। इस घटना की खबर उस समय किसी को नही हुई।

सब लोग पात्र के डूबने की राह देख रहे थे, लेकिन पात्र नही डूबता। असभव विलब होते देखकर देखा गया, तो मालूम हुआ, एक छोटे-से मोती ने पात्र का छेद बद कर दिया है। उसमे जल जाता ही नहीं, पात्र कैसे डूबे। जिस समय पात्र को जल मे डूबना चाहिए था, वह शुभ लग्न जाने कब निकल गया, भास्कराचार्य को मालूम नहीं हुआ। उन्होने देखा, विधाता का विधान व्यर्थ नही किया जा सकता। लाचार होकर विधाता के विधान को शिरोधार्य करके भास्कराचार्य ने कन्या का ब्याह कर दिया। लीलावती भी भाग्य-लिपि के अनुसार शीघ्र ही विधवा हो गई।

तब पिता ने कन्या को अपने पास रखकर अपना सब पाडित्य सिखाना शुरू किया। लीलावती के पाडित्य का परिचय देने की विशेष आवश्यकता नही है। सुन पड़ता है, वह गणित करके वृक्षो के पत्तो की ठीक सख्या बता देती थीं। उन्होने अपना सारा जीवन पढने-पढाने मे ही बिताया।

२१. विद्या

यह महा बुद्धिमती विदुषी रमणी महाकवि कालिदास की पत्नी थीं। महाकवि कालिदास पहले महामूर्ख थे। उनके साथ विद्या देवी के विवाह का अद्भुत वृत्तात इस तरह है—विद्या

राजकुमारी थीं। उन्होने थोडी ही अवस्था मे सब शास्त्रो का अध्ययन कर लिया था। उनके यहाँ जो पडित आता था, वही उनसे शास्त्रार्थ मे हार जाता था। विद्या की यह प्रतिज्ञा थी कि जो विद्वान् उन्हे शास्त्रार्थ मे जीत लेगा, उसी के साथ वह ब्याह करेगी। सब पडितो ने हारकर अपने अपमान का बदला लेने के लिये यह सलाह की कि किसी महामूर्ख के साथ राजकुमारी का ब्याह करावेगे।

पडित लोग महामूर्ख की खोज करने लगे। एक जगह उन्होने देखा, कालिदास पेड पर चढे हुए जिस डाल पर खडे हैं, उसी को काट रहे है। पडितो ने सोचा, इससे बढकर मूर्ख दूसरा नहीं मिल सकता। उन्होने कालिदास को अपने पास बुलाकर राजदरबार मे चलने के लिये राजी किया।

उन्होने इन्हे समझा दिया कि तुमसे कुछ भी पूछा जाय, तुम उत्तर मे कह देना—वारि।

कालिदास राजसभा मे पहुँचे। पडितो ने तो षड्यन्त्र रच ही रक्खा था। उन्हीं की सम्मति से राजकुमारी ने पूछा—अजीर्णस्य किमौषधम्? (अजीर्ण की क्या दवा है?) कालिदास ने 'वारि' की जगह भूलकर 'चारि' कह दिया। राजकुमारी चकराई, पर पडितो ने अपनी ओर से यह अद्भुत व्याख्या की कि यह बहुत ठीक कहते हैं—अजीर्ण की दवा चार है—हर्रा, पथा, निद्रा, वारि।

इस तरह कालिदास को अपूर्व पडित साबित करके पडितो ने उनसे राजकुमारी का ब्याह करा दिया।

एक किंवदती यह भी है कि कालिदास से राजकुमारी का

मूक शास्त्रार्थ होने की बात पडितो ने पक्की की थी। विद्या ने एक उँगली दिखाई, कालिदास ने दो दिखाई । विद्या का भाव था, ब्रह्म एक है । कालिदास समझे, एक आँख फोडने को कहती है, सो उन्होने दिखाया, मै दोनो फोड दूँगा । पडितो ने उसका समाधान यो किया कि यह कहते है, एक नही, प्रकृति और पुरुष दो सृष्टि के कारण हैं । फिर विद्या ने पाँच उँगलियाँ उठाई कालिदास ने यह समझकर कि थप्पड मारने को कहती है, दसो उँगलियाँ उठाई । उनका मतलब यह था कि मै दोनो हाथ से थप्पड मारूँगा । पडितो ने इसका भी अपूर्व समाधान किया । वह यह कि इद्रियाँ पाँच नहीं, दस है, पाँच ज्ञानेंद्रिय और पाँच कर्मेंद्रिय ।

कुछ भी हो, कालिदास से विद्या का ब्याह हो गया। रात को वह राजकुमारी के महल मे गए । विद्या ने इनको चित्र-शाला के तरह-तरह के चित्र दिखाने शुरू किए । ऊटो की कतार एक चित्र मे देखकर यह बे-साख्ता कह उठे—उट्र-उट्र । इनके उच्चारण से विद्या को पडितो के षड्यत्र का पूरा पता लग गया, क्योकि उसने फिर कई तरह परीक्षा करके इन्हे जाँच लिया । विद्या इससे इतना खिन्न हुई कि उसने वैधव्य स्वीकार करके कालिदास को मार डालना पसद किया । मूर्ख-सग से बढकर विद्वान् के लिये और क्या दुख हो सकता है ।

विद्या ने महल के पीछे की खिडकी खोलकर उसमे झाँकने के लिये कालिदास से कहा । जैसे यह झाँके, वैसे ही उसने इन्हे नीचे ढकेल दिया । महल के नीचे नदी थी, और उसमे पानी के भीतर एक शिवमूर्ति । कालिदास की जीभ अचानक दाँतो के

बीच मे पडकर कट गई, और शिवमूर्ति पर चढ गई। आशु-तोष शकर प्रसन्न और प्रकट होकर वर माँगने को कहा। यह समझे, पूछते है, किसने ढकेल दिया ? यह विद्या-विद्या कहने लगे। शकर ने तथास्तु कह दिया।

अधिक न कहकर इतना ही लिखना यथेष्ट होगा कि कालिदास ने थोडे ही समय मे शकर के वर से यथेष्ट विद्या पढ ली, और महाकवि हुए। कालिदास जब पढ-लिखकर, विद्वान् होकर उस देश को लौटे, और राजकुमारी के घर आकर द्वार खुलवाया, तो विद्या ने पूछा—अस्ति कश्चिद् वाग्विशेष ? (कुछ वाणी मे विशेषता है ?) कालिदास ने इसके उत्तर मे अस्ति, कश्चित्, वाक् इन तीन शब्दो को आदि मे रखकर कुमारसभव (अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज –इत्यादि), मेघदूत (कश्चित्कान्ता-विरहगुरुणा—इत्यादि) और रघुवश (वागर्थाविवसपृक्तौ—इत्यादि) इन तीन अमर काव्यो की रचना की, और विद्या को सतुष्ट किया।

२२. विदुला

यह वीर रमणी क्षत्रिय-कन्या थी। इनकी कथा महाभारत मे है। इनका पुत्र शत्रुओ से हार गया था, और हिम्मत हार-कर राज्य लौटाने की चेष्टा छोड बैठा था। इन्होने राजनीति-पूर्ण उत्तेजक वाक्य कहकर पुत्र को शत्रुओ के सामने खडा किया, और अत मे इन्हीं के प्रभाव से इनका पुत्र विजयी हुआ।

महाभारत मे जो इनके वाक्य कुती ने पाडवो को सदेश

मूक शास्त्रार्थ होने की बात पडितो ने पक्की की थी। विद्या ने एक उँगली दिखाई, कालिदास ने दो दिखाई । विद्या का भाव था, ब्रह्म एक है। कालिदास समझे, एक आँख फोडने को कहती है, सो उन्होने दिखाया, मै दोनो फोड दूँगा। पडितो ने उसका समाधान यो किया कि यह कहते है, एक नही, प्रकृति और पुरुष दो सृष्टि के कारण है। फिर विद्या ने पाँच उँगलियाँ उठाई कालिदास ने यह समझकर कि थप्पड मारने को कहती है, दसो उँगलियाँ उठाई । उनका मतलब यह था कि मै दोनो हाथ से थप्पड मारूँगा। पडितो ने इसका भी अपूर्व समाधान किया। वह यह कि इद्रियाँ पाँच नही, दस हैं, पाँच ज्ञानेंद्रिय और पाँच कर्मेंद्रिय।

कुछ भी हो, कालिदास से विद्या का ब्याह हो गया। रात को वह राजकुमारी के महल मे गए। विद्या ने इनको चित्र-शाला के तरह-तरह के चित्र दिखाने शुरू किए। ऊटो की कतार एक चित्र मे देखकर यह बे-साखता कह उठे—उट्र-उट्र। इनके उच्चारण से विद्या को पडितो के षड्यत्र का पूरा पता लग गया, क्योकि उसने फिर कई तरह परीक्षा करके इन्हे जाँच लिया। विद्या इससे इतना खिन्न हुई कि उसने वैधव्य स्वीकार करके कालिदास को मार डालना पसद किया। मूर्ख-सग से बढकर विद्वान् के लिये और क्या दुख हो सकता है।

विद्या ने महल के पीछे की खिडकी खोलकर उसमे झाँकने के लिये कालिदास से कहा। जैसे यह झाँके, वैसे ही उसने इन्हे नीचे ढकेल दिया। महल के नीचे नदी थी, और उसमे पानी के भीतर एक शिवमूर्ति। कालिदास की जीभ अचानक दाँतो के

बीच मे पडकर कट गई, और शिवमूर्ति पर चढ गई। आशुतोष शकर प्रसन्न और प्रकट होकर वर माँगने को कहा। यह समझे, पूछते है, किसने ढकेल दिया ? यह विद्या-विद्या कहने लगे। शकर ने तथास्तु कह दिया।

अधिक न कहकर इतना ही लिखना यथेष्ट होगा कि कालिदास ने थोडे ही समय मे शकर के वर से यथेष्ट विद्या पढ ली, और महाकवि हुए। कालिदास जब पढ-लिखकर, विद्वान् होकर उस देश को लौटे, और राजकुमारी के घर आकर द्वार खुलवाया, तो विद्या ने पूछा—अस्ति कश्चिद् वाग्विशेष ? (कुछ वाणी मे विशेषता है ?) कालिदास ने इसके उत्तर मे अस्ति, कश्चित्, वाक् इन तीन शब्दो को आदि मे रखकर कुमारसभव (अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज —इत्यादि), मेघदूत (कश्चित्कान्ता-विरहगुरुणा—इत्यादि) और रघुवश (वागर्थाविवसंपृक्तौ—इत्यादि) इन तीन अमर काव्यो की रचना की, और विद्या को सतुष्ट किया।

२२. विदुला

यह वीर रमणी क्षत्रिय-कन्या थी। इनकी कथा महाभारत मे है। इनका पुत्र शत्रुओ से हार गया था, और हिम्मत हारकर राज्य लौटाने की चेष्टा छोड बैठा था। इन्होने राजनीतिपूर्ण उत्तेजक वाक्य कहकर पुत्र को शत्रुओ के सामने खडा किया, और अत मे इन्ही के प्रभाव से इनका पुत्र विजयी हुआ।

महाभारत मे जो इनके वाक्य कुती ने पाडवो को सदेश

भेजने मे उद्धृत किए हैं, वे मुर्दे मे भी जान डालनेवाले हैं। जिन्हे इनके वे पाडित्य-पूर्ण बहुदर्शिता से भरे वाक्य पढने की इच्छा हो, वे महाभारत का उद्योग-पर्व पढकर देखे।

२३. खना

खना को ज्योतिष-शास्त्र का असीम ज्ञान था। उन्होने खुद ज्योतिष-शास्त्र से सबध रखनेवाले अनेक वैज्ञानिक तत्त्वो का आविष्कार किया। उनके समान भारी ज्योतिषी शायद भारत मे तो दूसरा नहीं हुआ।

किसी-किसी का कहना है कि खना अनार्यो से यह ज्योतिष-विद्या सीख आई थीं, उस समय आर्य लोग इस विद्या को नही जानते थे। यह अगर सच है, तो खना के लिये और भी गौरव की बात है। जो हम लोगो मे नहीं था, वह लाने के लिये अगर खना सचमुच कष्ट स्वीकार करके अनार्यो के द्वार पर गई थीं, तो हम उन्हे केवल उनकी विद्या के लिये गौरव देकर निश्चित नहीं हो सकते। उन्हे पूज्यपाद का पद मिलना चाहिए। जान पडता है, यहाँ पर खना ने पुरुष-जाति को भी परास्त कर दिया।

खना के पदाक अनुसरण करके और भी एक आदमी ज्योतिष सीखने अनार्यो के पास गए थे। उनका नाम मिहिर था। वह महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नो मे से एक रत्न वराह के पुत्र थे। ये खना और मिहिर दोनो अनार्यों की बस्ती मे एक साथ दिन-रात घोर परिश्रम करके ज्योतिष-विद्या सीख रहे थे। दोनो के मन मे समान आग्रह और समान

उत्साह था। कितनो ही अधकार-पूर्ण अमा निशाओ मे सिंह-शार्दूल आदि के घोर शब्द से प्रनिध्वनित वन के बीच बैठकर इन दोनो बालक-बालिकाओ ने नक्षत्र-खचित असीम आकाश के रहस्य का द्वार खोलने के लिये न-जाने कितनी चेष्टा की होगी! भरणी कहाँ है, कृत्तिका कहाँ है, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु आदि नक्षत्र कहाँ हैं, मगल, बुध आदि ग्रह कहाँ हैं, इसका निर्णय करने के लिये न-जाने कितनी राते उन्होने जागकर बिता दी होगी! कौन केतु, कौन ग्रह किधर जा रहा है, यह देखते-देखते, उनका पीछा करते-करते दोनो की ऑखे आकाश मे न-जाने कितनी दूर का चक्कर लगा आई होगी! आकाश के किस प्रात मे बैठकर मगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि आदि ग्रह मनुष्यो के ऊपर मगल और अमगल की वर्षा करते है, इस तत्त्व को समझने के लिये दोनो विद्यार्थियो को न-जाने कितना क्लेश स्वीकार करना पडा होगा!

भारतवर्ष के ज्योतिष-शास्त्र का गौरव आज तक लुप्त नहीं हुआ। योरप अभी तक उसके गुण गाता है। यह सब गौरव खना के स्मृति-मदिर पर फूल बरसा रहा है।

शिक्षा समाप्त हो गई। खना के साथ मिहिर का ब्याह हो गया। मिहिर और खना दोनो वराह के घर मे आकर सुख-पूर्वक रहने लगे।

खना ज्योतिष-शास्त्र मे स्वामी से भी बढकर विदुषी थीं। इसका प्रमाण नीचे लिखी घटना से मिलता है। खना और मिहिर जब ज्योतिष की शिक्षा समाप्त करके अपने घर को लौटे, उस समय यह घटना हुई थी।

ज्योतिष की शिक्षा समाप्त करके खना और मिहिर अनार्यों से बिदा हुए। ये बहुत दिनो तक अनार्यों के पास रहे थे, इससे उन्हे भी इन पर ममता हो गई थी। बिदा होने के समय इन्हे पहुँचाने के लिये अनार्य लोग बहुत दूर तक आए। बालक-बूढ़े-जवान सब अनार्य इन दोनो को बिदा करने के समय गॉव के किनारे पर बहनेवाली एक नदी के किनारे तक आए। वहॉ पर एक गऊ खडी थी, जो उसी समय ब्यानेवाली थी। आचार्य ने मिहिर से पूछा—वत्स, इस गऊ का जो बच्चा होनेवाला है, वह किस रग का होगा ? मिहिर ने गणित करके उत्तर दिया, लेकिन वह ठीक नही उतरा। तब आचार्य ने मिहिर के हाथ मे कई पोथियॉ देकर कहा—अभी तक तुम सपूर्ण ज्योतिष-शास्त्र नही सीख सके हो। ये पोथियॉ साथ लेते जाओ, इनकी सहायता से अपनी शिक्षा पूर्ण कर लेना।

मिहिर परीक्षा मे कृतकार्य नहीं हुए। आचार्य को उनकी शिक्षा की पूर्णता पर बराबर सदेह बना हुआ था। किंतु खना की विद्या-बुद्धि पर उन्हे अगाध विश्वास था। उनको पूर्ण निश्चय था कि खना की ज्योतिष की शिक्षा सपूर्ण हो गई है।

मिहिर ने आचार्य के हाथ से पोथियॉ ले तो ली, लेकिन उस समय उनका मन ठीक नहीं था। उन्होने अपने मन मे सोचा, इतने दिनो तक इतना परिश्रम करके जब मै पूर्ण रूप से ज्योतिष न सीख सका, तब इन कई साधारण पोथियो ही से क्या होगा ! यह सोचकर उन्होने वे पोथियॉ उस वेगवती नदी के भीतर फेंक दी। थोडी दूर पर खडी हुई खना अतिम बार गॉव की शोभा निहार रही थीं। एकाएक यह घटना

उनकी नजर के तले पड गई। वह दौडकर मिहिर के पास आई, और कहने लगी—यह क्या कर डाला! मगर फिर क्या हो सकता था, वे पोथियाँ न-जाने कहाँ बहकर चली गईं। कहते है, उन पोथियो के साथ ही भूगर्भ की ज्योतिष-विद्या इस ससार से लुप्त हो गई।

खना के जीवन का अतिम भाग बडा ही हृदय-विदारक हुआ। खना के ससुर बराह विक्रमादित्य की सभा के एक रत्न थे। आकाश मे सब मिलाकर कितने तारे है, यह जानने के लिये एक समय राजा विक्रमादित्य की बडी इच्छा हुई। इस प्रश्न की मीमासा का भार महाराज ने वराह के ऊपर रक्खा। किंतु वराह किस विद्या के प्रभाव से यह बता देते? यह तो उनके ज्ञान की सीमा के बाहर था।

खना ने ससुर का उदास मुख देखकर, पूछकर सब हाल जान लिया। उन्होने ससुर को आश्वासन देकर कहा—आप चिता न करें, मै बता दूँगी।

खना की ज्योतिष-विद्या का फल लेकर बराह पडित राज-सभा मे पहुँचे। महाराज को बडा विस्मय हुआ। उन्होने वराह से कहा—तुमने किस उपाय से तारे गिन लिए—बताओ। वराह को उसकी रीति कुछ भी मालूम न थी। लाचार होकर उन्हे खना का नाम लेना पडा।

विक्रमादित्य ने खना की विद्या का परिचय पाकर उनको अपनी सभा मे दसवे रत्न का आसन देना चाहा।

पुत्र-वधू को राजसभा मे आकर बैठना होगा, यह सुनते ही वराह के सिर पर जैसे वज्र गिर पडा। वह सोचने लगे कि

किस तरह इस विपत्ति से छुटकारा मिले। अत को यह ठीक हुआ कि खना को जिह्वा काट दी जाय। तब वह बोल नहीं सकेगी, और फिर राजसभा के किसी प्रयोजन की नहीं रहेगी।

वराह ने पुत्र को यह निष्ठुर कार्य सौपा। मिहिर शस्त्र हाथ मे लिए खना के पास पहुँचे। खना पहले ही से तैयार बैठी थी। उन्होने स्वामी को देखकर कहा—मैने गणित करके बहुत दिनो से अपने भाग्य का फल जान लिया था। तुम सकोच मत करो। जो विधाता ने लिख दिया है, वह अवश्य ही होगा। यो कहकर खना ने अपनी जीभ बाहर निकाल दी। मिहिर ने उनकी जीभ काट ली। धमनी के रक्त-बिंदु के साथ भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ ज्योतिषी के प्राण भी निकल गए।

२४. मीराबाई

मीराबाई चित्तौर के प्रात स्मरणीय राना-वश मे ब्याही थी। इनके स्वामी राना कुभा थे। यह रानी परम वैष्णव और भक्त कवि थी। चित्तौर केवल रमणियो क वीरता के गौरव से उन्नत नही है, उसी के साथ रमणी की विद्वत्ता के गौरव का अमूल्य मुकुट भी उसके मस्तक पर विराजमान है। मीराबाई की ख्याति जितनी उनकी धर्मनिष्ठा और भगवद्भक्ति के कारण है, उतनी ही विद्वत्ता के लिये भी है।

मीरा एक राठौर-सामत की कन्या थी। लडकपन से ही उनके असाधारण रूप और मधुर कठ की प्रसिद्धि थी। इसके लिये वह दूर-दूर देश-विदेश मे प्रसिद्ध हो चुकी थी। उनका

रूप देखने और गाना सुनने के लिये उनके पिता के घर पर अनेक स्थानो से लोग आया-जाया करते थे। मीरा के रूप-लावण्य और सगीत की माधुरी पर सभी मुग्ध हो जाते थे। इन मुग्ध अतिथि राजकुमारो मे चित्तौर के युवराज कुभाजी भी थे। मीरा का रूप देखकर और गाना सुनकर वह इतना रीझ गए कि राठौर-सामत के घर से लौटकर अपने राज्य तक आना उनके लिये असभव हो उठा। वह वहीं कई दिन तक रहे। जाते समय अपने हाथ की रत्न-जटित बहुमूल्य अँगूठी प्रेम की निशानी देते गए। अँगूठी के साथ ही उनका हृदय भी उनके हाथ से जाता रहा।

कुभाजी चित्तौर पहुँचे। उसके बाद ही विवाह-सबध का प्रस्ताव लेकर दूत राठौर-सामत के पास पहुँचा। कुल-शील-मान-गुण आदि मे कुभाजी मीरा के योग्य वर थे। यथा-समय शुभ लग्न मे ब्याह हो गया।

मीरा बचपन से ही भक्ति-सपन्न थीं। उनके हृदय मे ससार के भोग-विलास की लालसा का लेश भी न था। पिता के घर मे वह अक्सर दिन-भर सबके साथ हरि-नाम लिया करती थीं—भगवद्भजन मे मग्न रहती थीं। ससार के प्रलोभनो की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती थीं।

ससुराल की मर्यादा ने उन्हे राजमहल की ड्योढी के भीतर कैद कर दिया। वहाँ के ऐश्वर्य ने उन्हे पग-पग पर ससार की ओर खीचना चाहा। खुले आँगन मे सर्व-साधारण के सामने मुक्त कठ से हरि-गुण-गान करने का मौका उन्हे नहीं मिला। महल की दीवारो ने कठावरोध कर दिया। मीरा

दिन-दिन मलिन और उदास होने लगी। उनके भक्ति-प्रवाह ने सगीत-मार्ग से बहने का मौका न पाकर दूसरी राह निकाल ली।

मीरा पढी-लिखी थी। उन्होने भक्ति-भाव-पूर्ण भजन बनाना शुरू कर दिया। ये सब कविता उनके उपस्य देव गिरिधरगोपाल के सबध मे है। उनकी कवित्व-शक्ति और प्रतिभा अब तक गुप्त थी, अब वह स्फूर्ति प्राप्त करने लगी। उनकी भक्ति-भाव-पूर्ण आवेशमयी रचना जब सर्व-साधारण मे प्रचारित हुई, तब चारो ओर प्रशसा होने लगी। उन्हे कवि की पदवी और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

राजपूत वैष्णव उनके बनाए भजनो को भक्ति के साथ गाने लगे। आज तक वे भजन राजपूताने मे और भारत के अन्य स्थानो मे भी गाए जाते है। और, सच पूछो, तो उन भजनो ने मीरा को अमर बना दिया। उन्होने भक्ति-रसात्मक काव्य 'राग-गोविद' और जयदेव-कृत 'गीतगोविद' की एक टीका भी रची है। ये दोनो ग्रथ ऐसे है कि सब लोग इनकी प्रशसा करते है। राना कुभाजी भी कविता करने लगे थे। सुना जाता है, मीरा ने ही उन्हे कविता करना सिखाया था।

मीरा अपने को धन-सपत्ति या भोग-विलास मे मग्न नही रख सकी। स्वाधीनता के साथ मुक्त-कठ होकर दिन-रात कृष्ण-कीर्तन करने और अन्य लोगो को हरि-नाम-पीयूष पिलाने के लिये उनका मन पागल हो उठा। उन्होने स्वामी से अपनी इच्छा कह दी। कुभाजी की आज्ञा से अत पुर मे ही रनछोरदेव अथवा गिरिधरगोपाल का मदिर

बन गया। हरएक वैष्णव-वैष्णवी को उस मदिर मे जाने का अधिकार था। मीरा उन वैष्णव स्त्री-पुरुषो के साथ विना सकोच के मिलकर कृष्ण-कीर्तन करने लगी। उसी मे उन्हे परम आनद मिलता था। इसमे मीरा यहाँ तक तन्मय हो गई कि स्वामी की सेवा का भी खयाल उन्हे न आता था।

कुभाजी को अपनी रानी का इस तरह विना किसी सकोच के सर्व-साधारण के साथ मिलना-जुलना देखकर बहुत ही क्षोभ हुआ। वह राजा थे, उनकी भोग-विलास की प्रवृत्ति तब तक वैसी ही तीव्र थी। वह चाहते थे कि उनकी असख्य विलास की सामग्रियो के साथ मीरा भी उनके विलास की सामग्री बन जायँ, किंतु मीरा कभी उस तरह स्वामी की सेवा नही करती थी। कुभाजी क्रमश इस बात का अनुभव करने लगे कि उनकी स्त्री का चित्त दिन-दिन उन पर से उचटता जाता है, और वह खुद इसका कुछ प्रतिकार नही कर पाते। तब उन्होने फिर विवाह करने का इरादा किया। मीरा के आगे जब यह प्रस्ताव उठाया गया, तो उन्होने खुशी से अपनी सम्मति दे दी।

मीरा की सम्मति पाकर रानाजी अपने लायक कन्या खोजने लगे। झालावार-राजकुमारी के रूप-लावण्य की खबर राना के कानो तक पहुँची। उन्होने उक्त राजकुमारी के साथ ब्याह करने का सकल्प किया। किंतु राजकुमारी के साथ मदारगढ के राठौर-राजकुमार का ब्याह होने की बात पक्की हो चुकी थी। कुभाजी इससे भी पीछे नही हटे। ब्याह की रात को जाकर उस राजकुमारी को हर लाए। झालावार

की राजकन्या मदार-राजकुमार पर अत्यत आसक्त थी। दोनो मे गहरा और हार्दिक अनुराग था। चित्तौर के राना उन्हे तो हर लाए, मगर उनके मन को नहीं हर सके। जान पडता है, कुभाजी के भाग्य मे विधाता ने दापत्य-सुख लिखा ही नही था।

पहले ही कह चुके है कि राना के महल के भीतर रनछोर-देव के मदिर मे कभी वैष्णव-वैष्णवी जा सकते थे। एक दिन मदार-राजकुमार अपनी प्रिया को देखने की अभिलाषा से वैष्णव का वेष बनाकर उस मदिर मे पहुँचे। जो अतिथि वैष्णव देव-दर्शन और हरि-कीर्तन के लिये मदिर मे जमा होते थे, वे विना भोजन किए नहीं जाने पाते थे। सबको देवता का प्रसाद खाना पडता था। उस दिन सब भोजन कर गए, मगर उक्त राजकुमार ने जल ग्रहण नही किया। अतिथि भोजन न करेगा, तो अधर्म होगा, यह सोचकर धर्मनिष्ठ मीरा से नही रहा गया। उन्होने उस नवीन वैष्णव से भोजन करने के लिये अनुरोध किया। वह सहज मे राजी नही हुए। बहुत अनुरोध करने पर उन्होने मीरा से कहा—अगर आप मेरा एक अनुरोध मानें, तो मै भी आपका कहा करूँगा। आप प्रतिज्ञा कीजिए। मीरा ने और उपाय न देखकर प्रतिज्ञा की। तब मदार-राजकुमार ने अपना परिचय देकर झालावार-कुमारी का सब हाल कहा। और अत को झालावार-कुमारी के साथ केवल एक बार साक्षात् करना चाहा।

राजपूत के अत पुर मे पर-पुरुष को ले जाना बहुत ही कठिन और जान-जोखिम का काम है। किंतु राजकुमार के

विलाप और कातर अनुरोध को सुनकर मीरा का दयालु हृदय पसीज उठा। इसके सिवा वह प्रतिज्ञा कर चुकी थीं। इसलिये विपत्ति अपने सिर पर लेकर उन्हे यह दुःसाहस का काम करना पडा।

मीरा ने अतःपुर का गुप्त द्वार खोलकर राजकुमार को झालावार-कुमारी का घर दिखा दिया। दुर्भाग्य-वश रानाजी उस समय वही मौजूद थे। उन्होने वैष्णव वेषधारी राजकुमार को पहचान लिया। अपनी प्रणयिनी के साथ राजकुमार की भेंट नहीं हुई।

खोज करने से शीघ्र ही रानाजी को मालूम हो गया कि मीरा की सहायता से ही राजकुमार को अतःपुर मे जाने का मौका मिला। मीरा के ऊपर तो वह पहले से ही असतुष्ट थे, इस घटना ने बारूद मे आग का काम किया। उन्होने कडे स्वर मे मीरा से कहा—अतःपुर का गुप्त द्वार खोलकर पर-पुरुष को पहुँचाने के अपराध के लिये मैं तुमको अपने राज्य से निकालता हूँ। यह कठोर वाणी भक्त मीरा के हृदय को तनिक भी विचलित न कर सकी। महल और सडक दोनो ही उनके लिये समान थे। वह स्वामी के चरणो की रज मस्तक मे लगाकर भगवान् का नाम लेती हुई महल से निकलकर चल खडी हुई। महल की ओर एक बार भी मुड कर उन्होने नहीं देखा।

चित्तौर की प्रजा मीरा को बडी श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। मीरा के न रहने से चित्तौरपुरी उदास हो उठी। सब प्रजा रानाजी से असतुष्ट हो गई, सर्वत्र उनकी निंदा होने

की राजकन्या मदार-राजकुमार पर अत्यत आसक्त थी। दोनो मे गहरा और हार्दिक अनुराग था। चित्तौर के राना उन्हे तो हर लाए, मगर उनके मन को नही हर सके। जान पडता है, कुभाजी के भाग्य मे विधाता ने दापत्य-सुख लिखा ही नही था।

पहले ही कह चुके है कि राना के महल के भीतर रनछोर-देव के मदिर मे कभी वैष्णव-वैष्णवी जा सकते थे। एक दिन मदार-राजकुमार अपनी प्रिया को देखने की अभिलाषा से वैष्णव का वेष बनाकर उस मदिर मे पहुँचे। जो अतिथि वैष्णव देव-दर्शन और हरि-कीर्तन के लिये मदिर मे जमा होते थे, वे विना भोजन किए नहीं जाने पाते थे। सबको देवता का प्रसाद खाना पडता था। उस दिन सब भोजन कर गए, मगर उक्त राजकुमार ने जल ग्रहण नही किया। अतिथि भोजन न करेगा, तो अधर्म होगा, यह सोचकर धर्मनिष्ठ मीरा से नही रहा गया। उन्होने उस नवीन वैष्णव से भोजन करने के लिये अनुरोध किया। वह सहज मे राजी नही हुए। बहुत अनुरोध करने पर उन्होने मीरा से कहा—अगर आप मेरा एक अनुरोध मानें, तो मै भी आपका कहा करूँगा। आप प्रतिज्ञा कीजिए। मीरा ने और उपाय न देखकर प्रतिज्ञा की। तब मदार-राजकुमार ने अपना परिचय देकर झालावार-कुमारी का सब हाल कहा। और अत को झालावार-कुमारी के साथ केवल एक बार साक्षात् करना चाहा।

राजपूत के अत पुर मे पर-पुरुष को ले जाना बहुत ही कठिन और जान-जोखिम का काम है। किंतु राजकुमार के

विलाप और कातर अनुरोध को सुनकर मीरा का दयालु हृदय पसीज उठा। इसके सिवा वह प्रतिज्ञा कर चुकी थीं। इसलिये विपत्ति अपने सिर पर लेकर उन्हे यह दु साहस का काम करना पडा।

मीरा ने अत पुर का गुप्त द्वार खोलकर राजकुमार को झालावार-कुमारी का घर दिखा दिया। दुर्भाग्य-वश रानाजी उस समय वहीं मौजूद थे। उन्होने वैष्णव वेषधारी राजकुमार को पहचान लिया। अपनी प्रणयिनी के साथ राजकुमार की भेट नहीं हुई।

खोज करने से शीघ्र ही रानाजी को मालूम हो गया कि मीरा की सहायता से ही राजकुमार को अत पुर मे जाने का मौका मिला। मीरा के ऊपर तो वह पहले से ही असतुष्ट थे, इस घटना ने बारूद मे आग का काम किया। उन्होने कडे स्वर मे मीरा से कहा—अत पुर का गुप्त द्वार खोलकर पर-पुरुष को पहुँचाने के अपराध के लिये मैं तुमको अपने राज्य से निकालता हूँ। यह कठोर वाणी भक्त मीरा के हृदय को तनिक भी विचलित न कर सकी। महल और सडक दोनो ही उनके लिये समान थे। वह स्वामी के चरणो की रज मस्तक मे लगाकर भगवान् का नाम लेती हुई महल से निकलकर चल खडी हुई। महल की ओर एक बार भी मुड कर उन्होंने नहीं देखा।

चित्तौर की प्रजा मीरा को बडी श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। मीरा के न रहने से चित्तौरपुरी उदास हो उठी। सब प्रजा रानाजो से असतुष्ट हो गई, सर्वत्र उनकी निंदा होने

लगी। तब कुभाजी ने मीरा को लौटा लाने के लिये अपने आदमी भेजे। अभिमान तो मीरा के था ही नही। उन्होंने कहा—मै महाराज की दासी हूँ। उनकी आज्ञा से चली आई थी, और उन्हीं की आज्ञा से फिर चलती हूँ। मीरा फिर आकर चित्तौर मे रहने लगी।

पहले तो मीरा अत पुर मे बने हुए देव-मदिर मे केवल वैष्णवो के साथ भगवद्भजन कर सकती थी, मगर अब उन्हे सर्व-साधारण के साथ सडक पर भी भगवद्भजन की आज्ञा राना से मिल गई। मीरा को इस तरह सबके साथ विना किसी सकोच के मिलते-जुलते देखकर दुष्ट-स्वभाव और छिद्र ढूँढ़ने-वाले लोगो का दल, जो कि सर्वत्र हुआ करता है, मीरा की निंदा, उनके चरित्र पर आक्षेप करने लगा। मीरा के मधुर गान पर रीझकर किसी भगवद्भक्त बडे आदमी ने उन्हे उपहार के तौर पर एक बहुमूल्य अलकार दिया। मीरा ने वह अलकार अपने काम मे न लाकर इष्टदेव रनछोरदेव को पहना दिया। इस अलकार की बात लेकर दुष्ट लोग तरह-तरह से मीरा की निंदा फैलाने लगे। सब बातें राना के कानो तक पहुँचीं। उन्होने क्रोध से अधे होकर मीरा को पत्र लिख भेजा—मीरा, नदी आदि मे डूबकर अपनी जान दे दे। पत्र पाकर मीरा ने एक बार स्वामी से मिलना चाहा। लेकिन राना ने भेट नहीं की। तब मीरा स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य करके नदी मे फाँद पडीं। मगर नदी ने उन्हे डूबने नही दिया, वह बेहोश होकर किनारे आ लगीं।

होश आने पर मीरा पैदल ही वृदावन की ओर चल

दीं। राजरानी आज राह-राह भिक्षा माँगती-खाती चलीं, लेकिन उसके लिये उनके मन मे रत्ती-भर क्षोभ नही हुआ। कृष्ण नाम के प्रभाव से भूख-प्यास, थकन, कष्ट आदि उनका कुछ बना नही सकते थे। जिधर से मीराबाई तन्मय भाव से हरि-गुण-गान करती निकलती थी, उधर ही यह समाचार फैल जाता था कि मीराबाई इधर आ रही हैं। वैसे ही आस-पास के गाँवो से दल-के-दल लोग आकर उनके साथ हो जाते थे। सभी उनके साथ वृंदावन जाने के लिये तैयार थे।

हजारो की सख्या मे भक्त यात्रियो का दल साथ लिए हुए मीरा वृंदावन पहुँचीं। वहाँ श्री कृष्णचद्र के चरणारविंदो मे पूर्ण रूप से आत्मसमपण करके मीरा ने अपने को कृतार्थ समझा—उन्हे पूर्ण आनद प्राप्त हुआ। इस समय मीरा का यश सर्वत्र फैल गया। अनेक स्थानो से भक्त लोग आकर उनके शिष्य होने लगे। उनके मुख से मीरा के बनाए भजन भारतवर्ष के सब स्थानो मे फैल गए। मीरा सप्रदाय नाम का एक धर्म-सप्रदाय भी चल निकला।

सभी बाते कुभाजी के कानो तक पहुँचीं। तब मीरा के साथ अनुचित व्यवहार करने के कारण उन्हे पश्चात्ताप हुआ। वह खुद वृंदावन गए, मीरा से क्षमा-प्रार्थना की, और उनसे चित्तौर चलने के लिये कहा। मीरा सदा से स्वामी की आज्ञा को मानती चली आती थी। इस बार भी स्वामी की आज्ञा मानकर चित्तौर लौट आईं। लेकिन अधिक समय तक राजपुरी मे नहीं रह सकीं। धन-संपत्ति और भोग-विलास तो

उनको विष-से जान पडते थे। इसी कारण वह फिर वृदावन चली गई। कुभाजी के अनुरोध से वह कभी-कभी चित्तौर आकर उनसे मिल जाती थी।

मीरा ने शेष जीवन तीर्थ-पर्यटन मे ही बिताया। मीरा नाम-कीर्तन करते-करते, भक्ति के आवेश मे, अक्सर मूर्च्छित हो जाती थी। अत मे एक दिन सदा के लिये मूर्च्छित हो गई, फिर नही उठी। चित्तौर मे अब तक रनछोरदेव के साथ मीराबाई की पूजा होती है।

किंतु मीरा के बारे मे इतिहास के पडितो ने खोज करके अब और ही कुछ निश्चय किया है। उनका कहना है कि मीराबाई राना कुभा की स्त्री नहीं थी। इनके पति का नाम भोजराज था, जो उदयपुर के राना सग्रामसिह के बेटे थे। इनके देवर का नाम विक्रमाजीत था, और उसी ने नाराज होकर इनको विष पिलाया था। मीराबाई मेडतिया के राठौर रतनसिह की लडकी, राव ईदा की पोती और जोधपुर को बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधाजी की परपोती थीं। इनका जन्म-सवत् १५७३ मे, चोकड़ी गॉव मे, हुआ था, और यह ब्याह के कुछ ही दिन बाद विधवा हो गई थी। बहुत सभव है, इसी शोक को दूर करने के लिये इनका झुकाव भगवद्भक्ति की ओर हो गया हो।

कुछ भी हो, मीराबाई परमभक्त होने के साथ ही अच्छी विदुषी भी थी, जिसका पता इनके बनाए भजनो और गीत-गोविद की टीका देखने से लगता है। नमूने के तौर पर इनके दो भजन यहाँ लिखे जाते है—

(१)

मन रे परसि हरि के चरन ।
सुभग सीतल कमल कोमल त्रिविध ज्वालाहरन ,
, जे चरन प्रहलाद परसे इद्र पदवी धरन ।
जिन चरन ध्रुव अटल कीनो राखि अपने सरन ,
जिन चरन ब्रह्मड भेट्यो नखसिखौ श्रीभरन ।
जिन चरन प्रभु परसि लीने तरी गौतमघरन ,
जिन चरन कालीहि नाथ्यो गोपलीला करन ।
जिन चरन धार्यो गोबरधन गरब मघवा हरन ,
दास मीरा लाल गिरिधर अगम तारनतरन ।

(२)

बसो मोरे नैनन मे नँदलाल ।
मोहन मूरति साँवरि सूरति नैना बने रसाल ।
मोर मुकुट मकराकृत कुडल अरुण तिलक दिए भाल ,
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजती माल ।
छुद्र घटिका कटितट सोहति नूपुर सबद रसाल ,
मीरा प्रभु सतन सुखदाई भक्त-बछल गोपाल ।

२५. कर्माबाई

मीराबाई की तरह भक्त, धर्मनिष्ठ और विदुषी और रमणी भी एक थी । इनका नाम कर्माबाई था । भक्तमाल मे इनकी सक्षिप्त जीवनी लिखी है । अब तक जगन्नाथपुरी में कर्माबाई की खिचडी का भोग लगता है ।

यह दक्षिण सूबे के खाजल गाँव मे उत्पन्न हुई थीं । इनके

पिता परशुराम पडित थे। वह राजा के पुरोहित थे। परशु राभ बडे भारी विद्वान् और वैष्णव थे। उन्होने कन्या को भी बचपन से ही विष्णु-भक्त बना दिया था। शास्त्र का मर्म समझने और वैष्णव-धर्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन्होने कन्या को अच्छी तरह शिक्षा दी। कर्माबाई बचपन मे ही विशेष रूप से विदुषी हो गई। शिक्षा के साथ-साथ धर्म के ऊपर उनका विशेष अनुराग देख पडने लगा।

ससार-बधन मे बँधने के भय से कर्माबाई ब्याह नहीं करना चाहती थीं। किंतु पिता की आज्ञा से विवश होकर उन्हे ब्याह करना ही पडा। जब तक पिता के घर मे थी, तब तक किसी तरह का कष्ट नही था। दिन-रात आनद-पूर्वक हरि-भजन और देव-पूजा करके अपना समय बिताती थीं। किंतु स्वामी के घर मे पैर रखते ही चारो ओर से अशाति ने घेर लिया। स्वामी के साथ घोर मनोमालिन्य का सूत्रपात हुआ। उनके स्वामी वैष्णव न थे, और घोर विषयी थे। कर्माबाई जब कुछ धर्म-कार्य करती थीं, तो उसमे स्वामी की ओर से बाधा पडती थी। वह इस अत्याचार को अधिक दिन नही सह सकीं। स्वामी का ससर्ग छोडकर पिता के पास रहने लगीं। कुछ दिन बाद फिर स्वामी उनको लेने आए। तब कर्माबाई बहुत घबरा उठी।

स्वामी के हाथ से छुटकारा पाने का और उपाय न देख-कर उन्होने भाग खडे होना ही युक्ति-युक्त समझा। वृदावन जाने का निश्चय कर लिया। रात के समय सोने की कोठरी से बाहर निकली। घर के द्वार बद थे, भागने के लिये कोई

राह न थी। क्या करे ? ऊपर छत पर से नीचे फाँद पडीं। इस तरह घर से बाहर तो निकल आई, लेकिन वृदावन की राह उनको नही मालूम थी। इस बारे मे अधिक सोचने का मौका भी नही था—जिधर जान पडा, उधर ही जान लेकर भागीं।

सबेरे उठकर कन्या को घर मे न देख परशुराम पडित बहुत चिंतित हुए। राजा के पास जाकर कन्या के चले जाने की बात कही। राजा ने पता लगाने के लिये चारो ओर अपने आदमी भेजे।

कर्माबाई एक मैदान नॉघ रही थीं, इसी समय पीछे उन्हें आदमियो का शोर-गुल सुन पडा। वह समझ गई कि उन्हीं की खोज को लोग आ रहे हैं। मैदान ऊसर था, कहीं पेड वगैरा भी नहीं थे, जो छिप रहतीं। कोई उपाय न देखकर वह यथाशक्ति भागने लगीं। कुछ दूर पर एक मरे हुए ऊँट की लाश पडी दिखाई दी। सियार-कुत्ते वगैरा ने उसके पेट का मास खाकर खोल कर दिया था। कर्माबाई उसी खोल मे छिप रहीं। वह लोथ सड-गल गई थी, भयानक दुर्गंध छाई थी। लेकिन कर्माबाई ने उधर ध्यान ही नहीं दिया।

राजा के जो आदमी कर्माबाई को खोजने जा रहे थे, उन्होने जब उधर किसी को न देखा, तब दूसरी तरफ चले गए। उधर कर्माबाई भी उस लाश के भीतर से निकलकर आगे बढीं। राह मे न खाने को मिला, न सोने को, मगर वह सब तरह के कष्ट सहती हुई अत को वृदावन मे पहुँच ही गईं। बहुत दिनो की अभिलाषा पूर्ण हुई। वह वृदावन में ही रहने लगीं—जी भरकर कृष्ण की सेवा-पूजा और आराधना करने लगीं।

कन्या को न पाकर परशुराम बहुत ही व्याकुल हुए। वह खाजल गॉव छोडकर कन्या की खोज मे देश-विदेश घूमने लगे। अत को वृ दावन मे आकर उन्होने कर्माबाई को देख पाया। देखा, कर्माबाई ऑखें मूँदे इष्टदेव का ध्यान कर रही हैं, उनके नेत्रो से प्रेम के ऑसुओ की धारा बह रही है, एक दिव्य ज्योति जैसे उनके शरीर को चारो ओर से घेरे है। कन्या की ऐसी देवी-मूर्ति देखकर पिता ने भी भक्ति के साथ उनके सामने सिर झुकाया।

परशुराम ने कन्या से घर चलने के लिये बहुत कहा-सुना, मगर कर्माबाई ने नम्रता के साथ अस्वीकार कर दिया। तब परशुराम आँखो के ऑसू पोछते हुए अपने गाँव को लौट गए। राजा के पास जाकर कन्या का सब हाल कहा।

राजा अत्यत भगवद्भक्त थे। कर्माबाई की अनन्य कृष्ण-भक्ति का हाल सुनकर उनके दर्शन के लिये वह खुद वृ दावन गए। उन्हे देखकर राजा बहुत प्रसन्न और सतुष्ट हुए। उन्होने कर्माबाई के रहने के लिये वृ दावन मे एक कुटी बनवा देने की इच्छा प्रकट की। किंतु उससे धरती के भीतर रहने-वाले असख्य जीवो की हत्या होगी, यह कहकर कर्माबाई ने नामजूर कर दिया। मगर राजा ने उनका कहा न मानकर वहाँ एक कुटी बनवा दी। उस कुटी का ध्वसावशेष अभी तक वृ दावन मे एक कर्माबाई के स्मारक-रूप में मौजूद है।

२६. लक्ष्मीदेवी

यह मिथिला के राजा चद्रसिंह की रानी थीं बहाँ लछिमी

के नाम से ही अधिक परिचित हैं। इन्हें विद्या-चर्चा का बडा अनुराग था। इसी कारण अनेक मैथिल पडित इनके यहाँ रहते और आश्रय पाते थे। 'विवाद चद्र' आदि ग्रथो के लेखक मिसरू मिश्र और मिताक्षरा की टीका बनानेवाले बालभट्ट ने इन्ही के आश्रय मे रहकर इन्ही की पृष्ठ पोषकता से विशेष प्रतिष्ठा पाई थी।

लक्ष्मीदेवी दर्शन शास्त्रो मे विशेष व्युत्पन्न थीं। वह पडितो के साथ दर्शन शास्त्रो के कूट प्रश्नो का विचार बडी खूबी के साथ करती थी। उन्होने खुद 'मिताक्षरा-व्याख्यान'-नामक मिताक्षरा की टीका बनाई है। इस ग्रथ से इनकी विद्या-बुद्धि का पूर्ण परिचय मिलता है।

२७. प्रवीनराय

बुदेलखड ओरक्षा के राजा इद्रजीतसिंह की सभा मे कवि कुल-तिलक केशवदास-ऐसे अनेक प्रसिद्ध पडित और कवि रहा करते थे। विदुषी प्रवीनराय इद्रजीतसिंह की प्रेयसी वेश्या और उनकी सभा का एक उज्ज्वल रत्न थी। प्रवीनराय कविता भी लिखती थी। इनकी कवित्व-शक्ति पर महाकवि केशवदास भी मुग्ध थे। राजसभा मे और अन्य स्थानो मे भी प्रवीनराय की कवित्व-शक्ति का विशेष सम्मान था। केशवदासजी ने इन्ही के लिये अपना 'कविप्रिया' ग्रथ लिखा है।

थोडे ही दिनो मे प्रवीनराय की विद्वत्ता, कवित्व-शक्ति और सौदर्य दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया। उस समय दिल्ली

के बादशाह अकबर थे। अकबर के कानो तक जब प्रवीनराय की कीर्ति पहुँची, तो उन्होने इद्रजीतसिह को लिख भेजा कि तुरत प्रवीनराय को दरबार मे भेज दे। किंतु मानी इद्रजीत सिह ने प्रवीनराय को अकबर के दरबार मे नही भेजा। अकबर ने नाराज होकर इस विद्रोहाचरण या हुक्म-उदूली के लिये इद्रजीतसिह पर एक करोड रुपए का जुर्माना कर दिया। यह जुर्माना माफ कराने के लिये महाकवि केशवदास, जो कि इद्रजीत के अभिन्न-हृदय मित्र भी थे, बीरबल के पास गए, और उनकी प्रशसा मे एक छद बनाकर, जिसके अत मे था—"दियो करतार दुओ कर तारी," उनको सुनाया, बीरबल प्रसन्न हो गए। उन्होने अकबर से कह-सुन-कर जुर्माने की रकम माफ करा दी। मगर प्रवीनराय को अकबर के दरबार मे हाजिर होना पडा। प्रवीनराय ने अपनी और कविताओ के साथ, जिसमे अकबर की प्रशसा भी थी, यह युक्ति-पूर्ण दोहा अकबर को सुनाया—

बिनती राय प्रबीन की, सुनिए साह सुजान,
जूठी पतरी भखत है बारी, बायस, स्वान।

अकबर ने खुश होकर प्रवीनराय को इद्रजीतसिह के दरबार मे लौट जाने की आज्ञा दे दी। इस तरह इस विदुषी रमणी ने अपनी अद्भुत प्रतिभा के कौशल से अपने धर्म की और साथ ही इद्रजीतसिह के मान की रक्षा की।

यह वेश्या के घर पैदा होकर अपने को पतिव्रता समझती थी। जन्म-भर इद्रजीतसिह के सिवा और किसी का मुँह इसने नही देखा। इसके प्रमाण मे प्रवीनराय का एक सवैया

यहाँ लिखा जाता है, जिसे उसने उस समय बनाकर इन्द्रजीत को सुनाया था, जब उसे अकबर ने बुलाया था।

आई हौ बूझन मत्र तुम्है निज स्वासन सो सिगरी मति गोई ;
देह तजो कि तजौ कुलि-कानि हिए न लजौ लजि है सब कोई।
स्वारथ औ' परमारथ को गथ चित्त बिचारि कहाँ तुम सोई ,
जा मैं रहै प्रभु की प्रभुता अरु मेरो पतिव्रत भग न होई।

प्रवीनराय का समय सवत् १६५० के लगभग है।

२८. मधुरवाणी

तजौर के राजा रघुनाथ बडे ही विद्यानुरागी नरेश थे। उनकी राजसभा मे अनेक विद्वान् पडित थे। राजा उनके साथ काव्य, साहित्य और धर्मशास्त्र की आलोचना किया करते थे।

अनेक विदुषी रमणी भी राजसभा मे स्थान पाती थी। विद्वान् पुरुष और विदुषी रमणियाँ राजा को नित्य नवीन काव्य रचकर सुनाया करती थी। विदुषी रमणियाँ भी पडितो के साथ धर्मशास्त्र और काव्य-साहित्य की आलोचना किया करती थी। इन सब रमणियो मे मधुरवाणी विशेष प्रसिद्ध थी। इनकी कविता बहुत मधुर होती थी। महाराज सब सभा के पडितो की अपेक्षा इनका अधिक सम्मान करते और इनकी कविता सुनकर विशेष सतुष्ट होते थे।

एक दिन महाराज सैकडो विदुषी रमणियो और पडितो के बीच सभा मे बैठे थे। कोई रमणी उनको धर्म-सगीत सुनाती थी, और कोई उनके आगे मधुरस्वर से रामायण पढ़ती थीं। कारण, राजा अनन्य राम-भक्त थे। एक विदुषी रमणी उस

दिन एक कविता रचकर लाई थी। उसमे रामचद्र के ऊपर महाराज की दृढ भक्ति का वर्णन था। कविता मे जहाँ रामचद्र की स्तुति थी, रामचद्र के चरित्रो का वर्णन था, उस अश को सुनते-सुनते राजा तन्मय हो गए। कविता समाप्त होने पर उन्होने कहा—"मै बराबर राम-चरित्र सुना करता हूँ, लेकिन जी नहीं भरता। जितनी बार सुनता हूँ, नया ही जान पडता है, उतना ही आनद मिलता है। मेरे सभा-पडित और विदुषी महिलाएँ अनेक बार नवीन छदो मे रचकर मुझे राम-चरित्र सुना चुके हैं, लेकिन उनकी रचना मे जैसे किसी बात की कमी मुझे जान पड़ती है, जैसे वे सब बातें नहीं कह सके, पूर्ण रूप से रामचद्र के गुणो का वर्णन नहो कर सके। मेरी इच्छा है कि कोई इस तरह राम-चरित्र का वर्णन करे, जिसमे वह कमी मुझे न जान पडे।

राजा ने सब सभा-पडितो को जमा करके नवीन रामायण-रचना का काम सौपना चाहा। लेकिन स्त्री या पुरुष कोई भी इस काम का भार अपने ऊपर लेने का साहस न कर सका। महाराज ने उदास भाव से उस दिन दरबार बरखास्त किया।

उसी रात को राजा ने स्वप्न देखा कि जैसे साक्षात् श्री-रामचद्र उनके सिरहाने खडे कह रहे हैं कि राजन्, तुम उदास क्यो होते हो? सरस्वती के समान विदुषी मधुरवाणी तुम्हारी सभा मे मौजूद है। उनके गान और कवित्व-भक्ति से मै भी सतुष्ट हूँ। उन्हीं को तुम रामायण रचने का काम सौपो, वही इस काम के योग्य हैं।

दूसरे दिन राजा ने मधुरवाणी से स्वप्न का सब वृत्तात

कहा। सुनकर मधुरवाणी ने कहा—राजाधिराज, श्रीरामचद्र की आज्ञा मेरे लिये शिरोधार्य है। वह सहायक हैं, तो मुझे कुछ दुविधा नही। अतर्यामी रामचद्र मेरी सब त्रुटियो को दूर कर देंगे।

मधुरवाणी ने सस्कृत मे जो रामायण बनाई थी, वह ताल-पत्र पर लिखी हुई बगलौर-मालेश्वर-वेद-वेदात-मदिर-नामक पुस्तकालय मे अभी तक सुरक्षित है। इसकी सपूर्ण प्रति नही प्राप्त हुई।

जितनी पुस्तक मिली है, उसमे चौदह सर्ग हैं। इन चौदह सर्गों मे विविध छदो मे रचे हुए डेढ हजार श्लोक है। पहले उपक्रम मे ग्रथकर्त्री ने महाराज रघुनाथ के लिये आशीर्वाद की प्रार्थना की है। उसके बाद वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, बाणभट्ट, माघ आदि महाकवियो को प्रणाम और उनका सम्मान किया है। उसके बाद सुललित भाषा मे राजा रघुनाथ की सभा का वर्णन है। फिर पूर्व-वर्णित इस ग्रथ की रचना का कारण कहा गया है। राजसभा के वर्णन से मालूम होता है कि महाराज रघुनाथ की सभा मे सैकडो विदुषी रमणी रहती थी। यही पर प्रथम सर्ग समाप्त हुआ है। उसके बाद असल रामायण शुरू हुई है। इसमे यथाक्रम रामचरित्र का वर्णन है।

मधुरवाणी मे कवित्व-शक्ति के सिवा और भी अनेक गुण थे। वह वीणा बहुत अच्छी बजाती थी। उनका वीणा बजाना सुनकर भ्रम होता था कि साक्षात् सरस्वती देवी स्वर्ग से आकर वीणा बजा रही हैं। वह सस्कृत और तेलगू, दोनो

भाषाएँ बहुत अच्छी तरह जानती थी । सुना जाता है, उनमे ऐसी क्षमता थी कि वह बारह मिनट मे एक सौ श्लोक रच सकती थी । उन्होने नैषध काव्य और कुमारसभव की टीका भी बनाई थी । वह सत्रहवी शताब्दी मे जीवित थी । उनके सबध मे और अधिक विवरण नही मिलता ।

२९. मोहनांगिनी

यह दक्षिण प्रदेश के राजा कृष्णदयाल की कन्या थी । लडकपन मे ही इनके पिता ने इनको सुशिक्षित कर दिया था। राजा रामदयाल के साथ इनका ब्याह हुआ था। ब्याह के बाद भी इनका अधिकाश समय ग्रथ पढने और नई भाषा सीखने में बीतता था। लडकपन से ही यह कविता रचने लगी थीं; और जवानी में काव्य-रचना करके यशस्विनी हुई थी । उन्होने मरीचि-परिणय नाम का एक काव्य रचा था। इनके ग्रथ का पडित-मडली मे आदर भी हुआ था। सुन पडता है, यह अपने पिता की सभा में रचना पढ़कर सभा-पडितो को मुग्ध कर देती थी ।

मोहनागिनी भरी जवानी मे विधवा हो गई थी । स्वामी के साथ ही चिता पर बैठकर यह सती हो गई ।

३०. मल्ली

इनका भी जन्म दक्षिण-प्रदेश मे ही हुआ था। राजा कृष्णदेव के समय में साहित्य-क्षेत्र मे यह यशस्विनी हो चुकी थीं । यह एक कुँभार की बेटी थी । शिक्षा के ऊपर इन्हें बडा

अनुराग था। यह कविता रच सकती थी । इनकी कविता मौलिक होती थी, और उसमे प्रतिभा का पूर्ण विकास देख पडता था। सुन पडता है, यह नहाने के बाद बाल सुखाने के समय कविता लिखने बैठती थी। इस तरह इन्होने एक रामायण लिख डाली थी। इनकी रामायण इतनी प्रसिद्ध हो गई थी कि पडितो ने उसे विद्यालय की पाठ्य-पुस्तक चुना था।

३१. अभया

यह भी दक्षिण-प्रदेश मे उत्पन्न हुई थी । यह भगवान् नाम के एक ब्राह्मण की कन्या थी । यह कैसी विदुषी थी इसका परिचय एक प्रवाद से ही मिलता है—लोग इन्हे देवी सरस्वती की कन्या कहते थे।

अभया के भाई-बहन सभी साहित्य-क्षेत्र मे प्रतिष्ठा पा चुके थे। इनके भाई प्रतिभाशाली कवि प्रसिद्ध थे, और बहनो का नाम भी कम न था। इनकी और बहनें भी कविता करती थी। मगर यह सबमे श्रेष्ठ मानी जाती थी। ज्योतिष, विज्ञान, वैद्यक और भूगोल-विद्या मे इनका ज्ञान असीम था। इन्होने भूगोल-विषयक एक बहुत उत्तम ग्रथ पद्य मे लिखा था, और ज्योतिष तथा विज्ञान की दो-एक पुस्तके भी रची थी । यह जीवन-भर क्वाँरी ही रहीं। देश-भर के पडित इनकी विद्वत्ता के कायल थे, और इनकी बडाई करते थे।

बहने इनके और थी । वे अनेक खड-काव्य और कविता लिख कर यशस्विनी हुई थी ।

३२. नाची

दक्षिण-प्रदेश मे एलेश्वर उपाध्याय नाम के एक महा-पडित थे। दर्शनशास्त्र, विज्ञान, वैद्यक और ज्योतिष मे उनका ज्ञान असीम था । नाची उन्ही की कन्या थी । नाची थोडी ही अवस्था मे विधवा हो गई थी । उपाध्यायजी एक पाठशाला खोलकर देश के अनेक विद्यार्थियो को शिक्षा देते थे । उनकी कन्या जब विधवा हो गई, तब वह अपने शिष्यो के साथ कन्या को भी शिक्षा देने लगे । नाची की बुद्धि वैसी तीव्र न थी, और न वह वैसी मेधाविनी ही थी । सहज मे कोई विषय नही सीख पाती थीं, इसी कारण वह अपने मन मे बहुत दुखित रहती थी ।

उपाध्यायजी के और भी कई शिष्य नाची की तरह अल्प-बुद्धि थे । उनकी बुद्धि और स्मरण-शक्ति तीव्र करने के लिये एलेश्वर उपाध्याय आयुर्वेद मे खोज करने लगे । उन्होने ज्योतिष पति नाम की एक लता ढूंढ निकाली । उस लता का रस पीने से बुद्धि तीव्र और धारणा-शक्ति अधिक हो जाती थी । उपा-ध्याय ने इसी लता का रस पिलाकर अनेक अल्पबुद्धि छात्रो को सहज मे मेधावी बना दिया था । यह देखकर नाची ने एक दिन बहुत-सा उसी लता का रस पी लिया । वह रस अधिक मात्रा मे पी लेने से विष का काम करता था । मगर नाची को यह हाल नही मालूम था ।

रस अधिक पी लेने से नाची के शरीर मे असह्य जलन पैदा हो गई। वह यत्रणा से विह्वल होकर एक कूप मे फाँद पडी। उसमे वह मूर्च्छितप्राय होकर आध घटे तक पडी रही। उनके पिता इस घटना को जानते नही थे। कन्या के अकस्मात् गायब हो जाने से व्याकुल होकर वह चारो ओर पता लगाने और नाची-नाची कहकर चिल्लाने लगे।

इतनी देर तक पानी मे पडे रहने से विष का असर कम हो चला था। नाची ने पिता की आवाज सुनकर कुएँ के भीतर से ही जवाब दिया। पिता ने आकर उन्हे बाहर निकाला। उसके बाद उस लता-रस के प्रभाव से नाची की मेधा-शक्ति बहुत बढ गई। थोडे ही दिनो मे उन्होने सब शास्त्र पढ लिए।

इसके बाद नाची खुद कविता रचने लगी। उनकी कविताएँ भाव की मधुरता और भाषा की चतुरता के कारण बहुत अच्छी होती थी। अत को नाची नाटक नाम से काव्य के आकार मे अपना जीवन-चरित्र उन्होने लिखा। उसमे उनके दु ख पूर्ण वैधव्य-जीवन का बहुत ही करुण वर्णन है।

अधेड अवस्था मे नाची तीर्थ-यात्रा के लिये निकलीं, और अनेक देशो मे घूमकर अनेक स्थानो के पडितो से शास्त्रार्थ किया। इस तरह पडितो को परास्त और दिग्विजय करती हुई वह पिता के पास फिर लौट आई, और वही उनकी मृत्यु हुई।

३३. विजया

यह कब उत्पन्न हुई थी, इसका कुछ पता नही चलता।

लेकिन इनकी कविता ऊँचे दर्जे की है, यह कैसी विदुषी और कवि थी, इसका पता एक श्लोक से चलता है, जो इनके सबध मे किसी कवि ने लिखा है। वह श्लोक इस प्रकार है—

सरस्वतीव कार्णाटी विजय का जयत्यसौ।
या वैदर्भगिरा वास॰ कालिदासादनन्तरम्॥

अर्थात्, कर्णाट देश की सरस्वती के समान विजया है। कालिदास के बाद वैदर्भी रीति इन्ही की कविता मे पाई जाती है। यह प्रशसा एक स्त्री-कवि के लिये कम गौरव की बात नहीं है। इस श्लोक से यह भी पता चलता है कि यह कर्णाट देश की रहनेवाली थी। इनकी कविता के दो-एक नमूने नीचे दिए जाते है—

आमोदैस्तैर्दिशि दिशि गतैर्दूरमाकृष्यमाणा
साक्षाल्लक्ष्मीन्तव मलयज द्रष्टुमभ्यागतोऽस्मि।
किं पश्याम॰ सुभग भवत क्रोडति क्रोड एव
व्यालस्तुभ्य भवतु कुशल मुच न साधु याम॥१॥
वक्रता विभ्रतो यस्य गुह्यमेव प्रकाशते।
कथ न स समान॰ स्यात्पुच्छेन पिशुन शुन॥२॥
सुमुखोऽपि सुवृत्तोऽपि सन्मार्गपतितोऽपि सन्।
सत्ता वै पादलग्नोऽपि व्यथयतयेव कटक॥३॥
आवाणो मणयो हरिर्जलचरो लक्ष्मी पयो मानुषी,
मुक्तौघा सिकता प्रवाललतिका शैवालमभ सुधा,
तीरे कल्पमहीरुह किमपरं नाम्नापि रत्नाकरो
दूरे कर्णरसायन निकटतरस्तृष्णाऽपि नो शाम्यति॥४॥
तप्ता मही विरहिणामिव चित्तवृत्ति
तृष्णाध्वगेषु कृपणेष्विव वृद्धिमेति।

सूर्यं करौर्दहति दुर्वचनै खलो नु
छाया सतीव न विमुचति पादमूलम् ॥ ५ ॥

हे मलयज चदन, दूर-दूर तक हरएक दिशा मे जानेवाली तेरी महक से आकृष्ट होकर तेरी लक्ष्मी अथवा शोभा को साक्षात् देखने के लिये हम आए हैं। मगर हम क्या देखें, तुम्हारी गोद मे तो सर्प क्रीडा कर रहे हैं। भाई, तुम्हारी कुशल हो, हमे छोड दो, हम कुशल के साथ यहाँ से चले जायँ—यही बडी बात होगी। [यह चदन के ऊपर ढालकर किसी ऐसे राजा पर कहा गया है, जिसका नाम तो बडा है, लेकिन सगति दुष्टो की है] ॥ १ ॥

जिसके टेढ होने पर गुह्य स्थान (पक्षातर मे गुह्य बात) ही प्रकट होता है, वह पिशुन (चुगलखोर दुष्ट) कुत्ते की दुम के समान क्यों न हो ॥ २ ॥

कटक (काँटा और पक्षातर मे शत्रु), सुमुख (अच्छे मुखवाला) सुवृत्त (गोल और पक्षातर मे सच्चरित्र), अच्छी राह मे पडा हुआ और सज्जनो के पैर मे लगा हुआ होने पर भी व्यथा ही पहुँचाता है ॥ ३ ॥

हे समुद्र, तेरे पास पत्थर मणियाँ हैं, जलचर जीव कच्छप आदि हरि का अवतार है, जलमानुषी लक्ष्मी है, बालू-मोती के ढेर है, सेवार मूँगे की लता है, जल अमृत है। किनारे के पेड कल्पवृक्ष है, और क्या कहें, नाम भी रत्नाकर है। मगर दूर से कानो के लिये रसायन, ये सब बाते सुन पडने पर भी, निकट आकर देखा, तो तुमसे प्यास भी नही बुझती, ऐसा खारी पानी है। यह भी अन्योक्ति है ॥ ४ ॥

गर्मियो मे धरती विरहियो की चित्तवृत्ति के समान तपी हुई है। राह चलनेवालो की प्यास सूम की तृष्णा के समान बढती ही जाती है। सूर्य अपनी किरणो से वैसे ही जलाते है, जैसे दुष्ट लोग दुर्वचनो से पीडा पहुचाते है। छाया सती स्त्री की तरह चरणो से लगी रहती है ॥ ५ ॥

३४. विज्जका

इनके देश आदि का कुछ पता नही चलता, और कोई ग्रथ भी नहीं मिलता। लेकिन यह भी बडी विदुषी थीं, और उसका इन्हे गर्व भी था। यह बात इन्हीं के रचित इस श्लोक से प्रकट होती है—

नीलोत्पलदलश्याम विज्जका मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्त सर्वशुक्ला सरस्वती॥

अर्थात्, नील कमल-दल के समान श्याम वर्णवाली मुझ विज्जका को विना जाने दडी कवि ने वृथा ही यह कह दिया कि सरस्वती एकदम श्वेतवर्ण है।

इससे दो बातें प्रकट होती है। एक यह कि श्याम वर्ण थी, और दूसरी यह कि इनको साक्षात् सरस्वती होने का दावा था। इनकी कुछ कविता नीचे लिखी जाती है—

छायासुप्तमृग शकुतनिवहैर्विष्वग्विलुप्तच्छद-
कीटैरावृतकोटर कपिकुलै स्कधे कृतप्रश्रय।
विश्रब्ध मधुपैनिपीतकुसुम श्लाघ्य स एकस्तरु-
र्यत्रागीकृतसत्वसप्लवभरे भग्नापदोऽन्ये द्रुमा ॥ १ ॥

केनापि चपकतरो बत रोपितोऽसि
कुग्रामपामरजनान्तिकवाटिकायाम् ।
यत्र प्ररूढनवशाकविवृद्धिलोभात्
गोभानवाटधदनाचितपल्लवोऽसि ॥ २ ॥

दृष्टि ते प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि
प्रायेणास्य शिशो पिता न विरसा कौपीरप दास्यति ।
एकाकिन्यपि यामि तद्वनमित स्रोतस्तमालाकुल
नीरन्ध्रा स्तनमुल्लिखतु जरठच्छेदा नलग्रन्थय ॥ ३ ॥

कमलिनी मलिनी दयित विना
न सहते सह तेन च सेवितुम् ।
तमधुना मधुना निहित हृदि
स्मरति सा रससारमहर्निशम् ॥ ४ ॥

किंशुककलिकान्तर्गतमिंदुकलास्पर्द्धि केसर भाति ।
रक्तनिचोलपिहित धनुरिव जतुमुद्रितमनगस्य ॥ ५ ॥

मेघैर्व्योम नवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो
धाराभिर्गगन वनानि कुटजे पूरैर्वृता निम्नगा ।
एका घातयितु वियोगविधुरा दीना वराकीं स्त्रिय
प्रावृट्काल हताश वर्णय कृत मिथ्या किमाडम्बरम् ॥६॥

अर्थात्, जिसकी छाया मे मृग सोते हैं, जिसके पत्तो को पक्षी बीट करके नष्ट कर देते हैं, जिसके छेदो मे कीडे रहते हैं, और डालो पर बदर आश्रय पाते हैं, जिसके फूलो के रस को सुख से भौंरे पीते हैं, वही एक पेड प्रशसनीय है। वह स्वय सब जीवो को आश्रय देकर और उनके उत्पात सहकर अन्य वृक्षो को निरापद् करता है। यह अन्योक्ति है ॥ १ ॥

हे चपे के पेड़, खेद है कि किसने तुझे नीच गांव में

गँवारो के बाग मे लगा दिया है ! वे गँवार नए निकले साग को बचाने के लिये तेरे पत्तो को तोड-तोडकर गऊ आदि जानवरो को खिलाते है ॥ २ ॥

हे पडोसिन, घडी-भर तुम मेरे घर को भी देखते रहना। क्योकि इस बच्चे का बाप कुएँ का खारी पानी नही पीता, इसीलिये मै अकेली ही तमाल के पेडो के झुमुट के भीतर बनी हुई बावली का पानी लेने जाती हूँ। वहाँ पेड ऐसे सटे हुए है कि कटे हुए नरकुल के पेडो के खोचो से स्तन छिल जाते हैं। यह स्वय दूती अथवा वाग्विदग्धा नायिका है, जो अपने उपपति को सकेत-स्थान का इशारा करती है ॥ ३ ॥

कमलिनी अपने प्यारे सूर्य के विना मलिन हो रही है। वसत के द्वारा हृदय मे निहित रससार को इस समय स्मरण करके वह विकल हो रही है ॥ ४ ॥

टेसू की कली के भीतर चद्रकला से स्पर्धा करनेवाला केसर लाल वस्त्र से ढके हुए कामदेव के जतुमुद्रित धनुष के समान शोभायमान है। वसत-वर्णन है ॥ ५ ॥

कोई विरहिणी वर्षा-ऋतु से कहती है कि तूने अकेली एक मुझ विरह की मारी हुई अबला को मारने के लिये बेकार इतना आडबर क्यो किया है कि आकाश मे बादल छाए है, पृथ्वी नवीन जल से परिपूर्ण हो रही है, दिशाओ मे बिजली की चमक छाई है, अतरिक्ष जल-धाराओ से परिपूर्ण हो रहा है, वनो मे कामोद्दीपक कुटज-पुष्पो की महक छाई हुई है, और नदियाँ वेगवती और जल-प्रवाह से परिपूर्ण हो रही हैं।

इतनी तैयारी की क्या जरूरत है ? मै तो विरह ही से मर रही हूँ । ॥ ६ ॥

३५. शीलाभट्टारिका

मालूम नही, यह किस देश मे कब हुई । इनके दो-तीन श्लोक शारगधर की पद्धति के सग्रह मे मिलते हैं । वे श्लोक आगे लिख दिए गए हैं । मुसलमानो के राजत्व-काल मे अथवा यो कहो कि जब-जब उन्होने चढाई की, तब-तब सस्कृत-साहित्य के अनेक दुर्लभ ग्रथ-रत्न जलाकर नष्ट-भ्रष्ट कर दिए । कौन कह सकता है कि हमारे देश की प्रतिभा के कितने श्रेष्ठ फल इस तरह सदा के लिये मिटा दिए गए ।

शीलाभट्टारिका कोई राजकुमारी जान पडती हैं । कारण, भट्टारिका भर्तृदारिका शब्द का अपभ्रश है । भर्तृदारिका शब्द प्राय राजकुमारियों के सबोधन मे उस समय प्रयुक्त हुआ करता था ।

कुछ भी हो, नीचे उनकी कविता के नमूने दिए जाते हैं—

पार्यक स्वास्तरण पतिरनुकूलो मनोहर सदनम् ।
तृणमिव लघु मन्यते कामिन्यश्चौयरतिलुब्धा ॥ १ ॥

दुर्दिवसे घनतिमिरे दु सचारासु नगरवीथीषु ।
पत्युर्विदेशगमने परमसुख जघनचपलाया ॥ २ ॥

य कौमारहर स एव हि वर ता एव चैत्रक्षपा
से चोन्मीलितमालतीसुरभय प्रौढा कदबानिला ।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसी तरुतले चेत समुत्कठते ॥ ३ ॥

इन श्लोको मे अश्लील चरित्र का वर्णन है, इसलिये इनका हिंदी-अनुवाद नहीं दिया गया। क्योकि उस समय यह वर्णन चाहे अश्लील न समझा जाता हो, लेकिन इस समय रुचि विगर्हित अवश्य समझा जायगा। सस्कृतज्ञ पाठक इसका अर्थ अनायास ही समझ लेगे।

३६. गुलबदन बेगम

भारत मे आकर राज्य करनेवाले बादशाहो और प्रतिष्ठित नवाबो, अमीर-उमरावो की बहू-बेटियो मे भी पढ़ने-लिखने का खासा चलन था। तात्पर्य यह कि मुसलमान-समाज भी स्त्री-शिक्षा का पक्षपाती था। शाहो—नवाबो—अमीरो की बेटियाँ-बहनें शिक्षा पाती थीं। उसमे से अनेक स्त्रियाँ काव्य, इतिहास आदि लिखकर यशस्विनी और प्रसिद्ध भी हुई हैं। मुसलमान-समाज मे अनेको स्त्रियाँ इस समय भी सुशिक्षिता, प्रतिभाशालिनी मौजूद हैं।

गुलबदन बेगम दिल्ली के बादशाह बाबर की लडकी और बादशाह अकबर की फूफी थीं। उनके भाई हुमायूँ थे। गुलबदन बेगम हुमायूँ के साथ रहकर भारतवर्ष के अनेक स्थानो मे घूमी थीं। वह बडी बुद्धमती थीं। हुमायूँ सल्तनत के अनेक काम उनकी सलाह लेकर करते थे। वह भाई के सुख-दुख में सदा सहायता करती रहीं। लडाई आदि के समय मे भी वह हुमायूँ के साथ ही रहती थीं।

गुलबदन ने हुमायूँनामा नाम की एक पुस्तक लिखी है। इस ग्रंथ मे हुमायूँ की विस्तृत जीवनी और उनके समय की

प्रधान-प्रधान घटनाएँ सुदर ढग से सुश्रृखला के साथ लिखी है। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक बेवरिज साहब की स्त्री ने अँगरेजी मे हुमायूँ नामा का अनुवाद करके इतिहास मे गुलबदन बेगम का नाम चिरस्मरणीय बना दिया है।

३७. जेबुन्निसा बेगम

जेबुन्निसा दिल्ली के प्रतापी मुगल बादशाह औरगजेब की लडकी थीं। इनकी माता भी किसी मुसलमान राजा की लडकी थीं। औरगजेब जेबुन्निसा को बहुत चाहते थे। लडकपन मे ही जेबुन्निसा की श्रेष्ठ प्रतिभा का परिचय पाकर बादशाह खुद उन्हे शिक्षा देने लगे थे।

जेबुन्निसा की स्मरण-शक्ति बहुत तेज थी। थोड़ी ही अवस्था में सारी कुरान कठ करके जेबुन्निसा ने बाप को सुनाया था। इससे औरगजेब को इतनी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने कन्या को उसी समय तीस हजार अशर्फियाँ इनाम मे दे दीं।

जेबुन्निसा मे जैसा अतुलनीय रूप था, वैसी ही वह सुघर, समझदार, दयालु, गुणी और गुण की कदर करनेवाली भी थी। उनमे स्वाभाविक प्रतिभा थी। किंतु विपुल राजसी ऐश्वर्य और विलास की गोद मे पलकर भी उन्होने कभी ईश्वर की दी हुई उस प्रतिभा का अपव्यय नहीं किया। सुशिक्षा और अपने अध्यवसाय से उन्होने उस प्रतिभा को विकसित किया, और सन्मार्गगामिनी बनाया।

वह अनेको बातो मे उस समय के समाज से आगे बढ गई थीं। यह बात उनकी-सी रमणी के लिये कम गौरव की

बात नहीं है। अरबी और फारसी-भाषा मे जेबुन्निसा की विशेष गति थी। कहा जाता है, उनके हाथ के अक्षर भी बहुत सुदर होते थे। वह कई ढग की लिखावट लिख सकती थी। उनमे पुस्तक पढने का अनुराग भी प्रशसनीय था। उनके भारी पुस्तकालय मे धर्म और काव्य-साहित्य के बहुत-से ग्रथ एकत्रित थे।

लडकपन मे ही जेबुन्निसा की कवित्व-शक्ति विकसित हो उठी थी। उन्होने कई काव्य-ग्रथ लिखे है। गद्य-रचना मे भी उन्हे कम दखल नहीं था। रुचि का परिमार्जित होना और भाषा की मधुरता ही उनकी रचना की विशेषता है। उनकी कविताओ को आज भी मुसलमान विद्वान् बडे शौक से पढते-सुनते है।

जेबुन्निसा मे केवल विद्या का ही अनुराग न था। वह शिक्षित और गुणी लोगो की यथेष्ट सहायता करके उनको उत्साह देती रहती थीं। उन्हीं की आर्थिक सहायता से पलकर अनेक धार्मिक, कवि और लेखक अपना गुजर करते थे, और निश्चित होकर तन-मन से अपने काम मे लगकर यशस्वी हो सके थे।

मुल्ला शफीउद्दीन अरजबेग ने कश्मीर मे रहकर 'तफसीरे काबिर'-नामक ग्रथ का तर्जुमा किया था। यह भी जेबुन्निसा के अनुग्रह का फल था। अरजबेग ने कृतज्ञता प्रकट करने के लिये ग्रथ का नाम 'जेबुन्तफसीर' रक्खा था। इनके सिवा और भी कई ग्रथकारो ने जेबुन्निसा के नाम पर अपने ग्रथो का समर्पण किया था। इससे स्पष्ट जान पडता है कि उस

समय शिक्षित समाज मे जेबुन्निसा की साधारण प्रतिष्ठा नहीं थी।

राजनीति के क्षेत्र मे भी जेबुन्निसा की यथेष्ट ख्याति थी। उन्होने इशेष आग्रह के साथ राजनीति शास्त्र का अध्ययन किया था। राज-काज मे औरगजेब की बहन रोशन-आरा ही पहले औरगजेब के प्रधान सहायको मे थीं। उनके मरने के बाद उनकी जगह लेकर जेबुन्निसा ने ही पिता पर अपना प्रभुत्व जमा रक्खा था। औरगजेब अपनी बुद्धिमती कन्या से सलाह लिए विना कभी किसी गुरुतर कार्य मे हाथ नहीं डालते थे।

जेबुन्निसा जिस समय २५ वर्ष की थी, उस समय एक बार औरगजेब बहुत बीमार हो गए। उस स्नेहमयी कन्या ने औरंगजेब से आब-हवा बदलने के लिये कश्मीर जाने को कहा। कन्या की सलाह युक्ति-युक्त होने पर भी पहले औरगजेब इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुए। कारण, वृद्ध शाहजहाँ तब तक आगरे के किले मे कैद थे। "मै अगर कश्मीर चला जाऊँगा, तो उस सुयोग मे राज्य के भीतर कोई साजिश न की जाय", यह सोचकर सदिग्ध-चित्त औरगजेब ने उस समय एक बार पिता को मरवा डालने का इरादा भी किया था। मगर यह पहले ही कहा जा चुका है कि जेबुन्निसा से पूछे विना वह कभी कोई बडा काम नहीं कर डालते थे। जेबुन्निसा को जब पिता का यह निष्ठुर विचार मालूम हुआ, तब उन्होंने ही औरगजेब को समझा-बुझाकर—ऊँच-नीच सुझाकर — इस कुकर्म से निवृत्त किया था।

शीघ्र ही शाहजहाँ मर गए। तब औरगजेब भी निश्चित होकर कश्मीर चले गए। जेबुन्निसा भी पिता के साथ गई। वह जब तक जीती रहीं, सदा पिता के पास रहकर उन्हे कर्तव्य का उपदेश करती रहीं।

जेबुन्निसा मन मे शिवाजी को प्यार करने लगी थीं। असल बात यह थी कि लोगो के मुँह से शिवाजी की वीरता का बखान सुनकर वह उन्हे श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगी थीं।

जिस दिन राजा जयसिंह के भुलावे मे पडकर शिवाजी औरगजेब के साथ अपने राजनीतिक झगडे तय करने के लिये दिल्ली के आम दरबार मे आकर उपस्थित हुए, उसी दिन चिलमन की आड से पहलेपहल जेबुन्निसा ने उनको देखा।

औरगजेब, जिसके प्रताप से सारा भारतवर्ष उस समय थरथरा रहा था, उसी के सामने जब शिवाजी निर्भयता के साथ आकर खडे हुए, तब मुग्ध दृष्टि से जेबुन्निसा उनकी वह अटल मूर्ति, निर्भीक भाव, प्रतिभा-प्रदीप्त तीव्र दृष्टि, तेजस्वी ढग देखने लगीं। आज तक कल्पना के द्वारा हृदय मे जिस वीर की पूजा करती थी, उसी आराध्य देवता को आँखो के आगे देखकर जेबुन्निसा का हृदय नि स्वार्थ, पवित्र, स्वर्गीय प्रेम से परिपूर्ण हो उठा। उनका हृदय पुष्पाजलि के समान आप-ही-आप महाराष्ट्र-वीर के चरणो मे लोट गया।

बादशाह के दरबार मे शिवाजी को जितना सम्मान मिलना चाहिए, वह कूटबुद्धि औरगजेब उन्हे नीचा दिखाने के लिये जान-बूझकर नहीं दिया। शिवाजी सब समझ गए, वह

क्रुद्ध सिंह की तरह मन-ही-मन गरजने लगे। मुसाहब और दरबारी लोग शिवाजी का अपमान और उनका मानसिक क्षोभ देखकर मुस्किराने लगे, मगर उदारहृदया रमणी जेबुन्निसा की आँखो से आँसू निकल पडे। अपने प्रेम-पात्र का अपमान देखकर वह साधारण स्त्रियो की तरह रोने नही लगी। सर्व-साधारण के सामने अत्यत निर्दयता के साथ वीर के अपमान का अन्याय देखकर उनका हृदय दु ख और निष्फल क्षोभ से उमड पडा।

दरबार बर्खास्त होने पर जेबुन्निसा ने औरगजेब के सामने जाकर अत्यत अभिमान-पूर्ण दृढ स्वर से कहा—जहाँपनाह, भरे दरबार मे बहादुर की बेइज्जती करना अच्छा नहीं हुआ।

बात पूरी होने के पहले ही उनकी आँखो मे आँसू भर आए, कठावरोध हो गया।

औरगजेब ने विस्मय के साथ तीक्ष्ण दृष्टि से कन्या के मुँह की ओर देखा। असल बात समझने मे देर नही लगी। औरगजेब कन्या को बहुत चाहते थे। क्रोध दबाकर कूटमति औरगजेब ने कहा—समझ गया, शैतान के फदे मे पैर डाल चुकी हो! अच्छी बात है, वह काफिर अगर पाक-दीन-इसलाम कबूल कर ले, तो मै उसके सब कसूर माफ करके तुम्हें ब्याह की इजाजत दे दूँगा।

सुनकर जेबुन्निसा शर्म से जैसे मर गई। वह अपने सुख की इच्छा से ब्याह की अनुमति लेने पिता के पास नही आई थी, वीर के अपमान का प्रतिविधान करवाने आई थी। वह

इस बात को भी फिर अच्छी तरह पिता से नही कह सकी । वह मन-ही-मन केवल अपने को धिक्कार देने लगी कि मुझे धिक्कार है ! हृदय के भीतर छिपी गुप्त बात को मै छिपा-कर नही रख सकी ! केवल स्वार्थ ही प्रकट कर दिया !

उसी दिन से जेबुन्निसा अपने प्रेम को अत्यत सकोच के साथ गुप्त रूप से हृदय के भीतर छिपाए रखने लगी। अपने मन का भाव फिर उन्होने कभी किसी के आगे प्रकट नही होने दिया।

वह शिवाजी को पाने के लिये कभी पागल नही हुई । उन्होने शिवाजी का प्रेम पाने की आशा को कभी भूलकर भी अपने हृदय मे स्थान नही दिया। जेबुन्निसा के नि स्वार्थ प्रेम ने कभी बदला नही चाहा। वह शिवाजी के शारीरिक सौंदर्य को जितना नही चाहती थी, उतना उनकी वीरता, देश-भक्ति और तेज को चाहती थी, वह शत्रु की कन्या—विधर्मी मुसल-मान की बेटी थीं। उनके साथ ब्याह करने मे शिवाजी का वह तेज कम होने का खयाल भी उनके हृदय मे बर्छी का-सा घाव करता था। इसी खयाल से कभी उन्होने किसी सूत्र से शिवाजी को अपने हृदय का भाव नही जानने दिया। उन्होने कभी शिवाजी के निकट प्रेम की भिक्षा नहीं माँगी। उन्होने शिवाजी को महत्त्व के जिस उच्च शिखर पर खडे देखा था, अपनी तृप्ति के लिये उस जगह से उन्हे भ्रष्ट देखने की आकाक्षा को कभी मन मे स्थान नहीं दिया। वह शिवाजी को प्यार करती थीं, और पूजती थीं।

जेबुन्निसा की लिखी कविताओ मे उनके जीवन की यह

करुण कथा—इस निष्फल प्रेम का इशारा स्पष्ट देख पडता है । सहृदय कवि साहित्य-राज्य मे अपने हृदय को नहीं छिपा सका ।

जेबुन्निसा की कविता मे उनके प्रेम की व्यर्थता सुदर रूप से प्रकट हुई है । कविता की हरएक पक्ति मे एक स्निग्ध निराश प्रेम की झलक पाई जाती है । नमूने के तौर पर कुछ पद्य नीचे लिखे जाते हैं—

गर्चे मन् लली असासम्, दिल चु मजनूँ दर हवास्त ।
सर बसहरा मीज़न, लेकिन हया ज़जीर पास्त ॥ १ ॥
बुलबुल अज शागिर्दिय शुद हमनशीने गुल बबाग ।
दर मुहब्बत काबिल, पर्वाना हम शागिर्दमास्त ॥ २ ॥
दर निहाँ खूनेमजाहिर गर्चे रगे नाजुक ।
रगे मन् हर मन निहाँ चॅ् रग सुर्ख अदर हिनास्त ॥ ३ ॥
दुखतरे शाह वले रूह, मुसाफिर अविद अं ।
जेबो जीनत बस हमीन नामे मन् जेबुन्निसास्त ॥ ४ ॥

अर्थात्, यद्यपि मै लैली के जिस्म मे हूँ, लेकिन मेरा दिल मजनूँ की तरह ख्वाहिशमद है । मै चाहती हूँ कि मजनूँ की तरह मै भी जगलो मे सर टकराती फिरूँ , लेकिन मेरे पैरो मे हया (शर्म) की जजीर पडी हुई है, इसी से विवश हूँ ॥ १ ॥

यह जो बुलबुल दिन-भर बाग मे फूल के इर्द-गिर्द घूम-घूमकर प्रेमालाप कर रही है, सो इसने मेरी ही शार्गिदी की है । वह जो इस फानूस के भीतर साफ रोशनी है, उसमे आत्मविसर्जन करने वाले पतग ने वह आत्मत्याग मुझसे सीखा है ॥ २ ॥

मेहँदी के पत्ते के बाहर की स्निग्ध श्यामलता मे जैसे उसके भीतर लाल रग ढका रहता है, वैसे ही मेरे हृदय मे प्रेम का रग छिपा हुआ है ।। ३ ।।

मै बादशाह की कन्या हूँ, लेकिन मेरी आत्मा हमेशा मुसाफिर की तरह है । धन-ऐश्वर्य मुझे तुच्छ-सा जँचता है । मै जेबुन्निसा (अर्थात् श्रेष्ठ सुदरी) हूँ , यही गौरव मेरे लिये काफी है ।। ४ ।।

गुफ्त अज इश्केबुतॉ ऐ दिल चे हासिल कर्दई ।
गुफ्तमारा हासिले जुल नालहाये हेवनेस्त ।। ५ ।।

मैने दिल से कहा कि ऐ दिल, तूने बुतो के इश्क मे क्या पाया ? दिल ने कहा—ऑसू बहाने के सिवा और कुछ नहीं ।। ५ ।।

हरके आमद दर जहॉ, आखिर बमतलबहा रसीद ।
पीर शुद जेबुन्निसा, ओरा खरीदारे न शुद ।। ६ ।।

जो कोई ससार मे आया, वह अत को उद्‌देश्य सिद्ध कर ले गया, लेकिन जेबुन्निसा बुड्ढी हो गई, पर उसके तई कोई खरीदार नहीं मिला ।। ६ ।।

जेबुन्निसा की और तरह की कविताओ मे बहुत सुदर कवित्व-शक्ति का परिचय मिलता है ।

अगर दुश्मन दुता गर्दद, जे ताजीमश मशोगाफिल ।
कमॉ चदॉ के खम गर्दद, लकारश कारगर आयद ।।७।।

अगर शत्रु तुम्हारे आगे झुके, तो तुम उसकी नम्रता मे भूल न जाओ, गाफिल न हो । कमान जितनी टेढी झुकती है, उतनी ही वह अपने काम मे कारगर होती है ।। ७ ।।

३८. राममणि, इंदुमुखी, माधुरी, रसमयी, गोपी

बॅगला-भाषा मे लिखित बगालियो के काव्य इतिहास आदि मे भी अनेक विदुषी रमणियो का परिचय मिलता है । प्राचीन वैष्णव-ग्रथो मे स्त्री-कवियित्रियो के बनाए अनेक पद बगला-भाषा को अलकृत किए हैं ।

राममणि सबसे प्राचीन स्त्री-कवि हैं । यह प्रसिद्ध प्राचीन बगाली कवि चडीदास के समय मे थी । इन्होने जो पद बनाए हैं, उनमे राधाकृष्ण की लीलाओ का वर्णन है ।

यह धोबी की कन्या थीं । यह भूख की मारी असहाय अवस्था में घूमती-घूमती सीरभूमि-जिले के नान्नुर गाँव मे बने हुए विशालाक्षी देवी के मदिर मे पहुँची । चडीदास इस मदिर के पुजारी थे । राममणि की दशा देखकर इन्हे दया आ गई, और इन्होने राममणि को दासी का काम देकर मदिर मे रख लिया । राममणि देवी का प्रसाद खाकर वहीं रहने लगीं । चडीदास ने अपनी कविता मे राममणि का हाल लिखा है ।

कहा जाता है, चडीदास राममणि को बहुत चाहते थे, और राममणि भी चडीदास को उसी प्रकार चाहती थी । मगर इनका प्रेम पवित्र तथा वासना से रहित था, उनमे कोई कुभाव नहीं था । चडीदास ने अपनी कविता के बीच भावावेश मे आकर रामी को गुरु और माता की सज्ञा दे डाली ।

चडीदास को धोबिन के प्रेम मे आसक्त कहकर गाँव के ब्राह्मणो ने उन्हे जाति-च्युत कर दिया था, और देवी की पूजा

का काम भी उनसे ले लिया था। लेकिन इससे उनका विशुद्ध प्रेम कम होने के बजाय और भी बढ़ गया।

× × ×

रामी के सिवा इंदुमुखी, माधुरी, गोपी और रसमयी का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। इनके जीवन-चरित के संबध मे कुछ भी सामग्री प्राप्य नही है। केवल इनके रचे पदो के 'संभोग' मे इनका नाम पाया जाता है। इनके सिवा और भी अनेक विदुषी स्त्रियो के रचे वैष्णव-धर्म के भजन आदि है।

३८. माधवी

माधवी नीलाचल मे रहती थी। बंगाल के चैतन्यदेव के जीवन-चरित—चैतन्यचरितामृत मे इनका हाल लिखा है। महाप्रभु चैतन्यदेव जब दक्षिण-प्रदेश मे घूमते हुए नीलाचल पहुँचे, उसी समय माधवी ने उनके दर्शन पाए थे। उसी समय से माधवी के हृदय मे भगवत्प्रेम का आविर्भाव हुआ, और वह एक श्रेष्ठ भक्त हो उठी। चैतन्यदेव ने जब से सन्यास व्रत धारण किया था, तब से वह स्त्री का मुख नही देखते थे, इसी कारण माधवी उनके सामने नही जा सकती थी। वह छिपकर आड़ से कृष्ण-प्रेम आत्मविस्मृत चैतन्यदेव का स्वरूप देखकर स्वयं भी आत्मविस्मृत-सी हो जाती थीं।

पदकल्पतरु ग्रंथ मे माधवी देवी के बनाए अनेक पद हैं। वे पद, भाषा, भाव और भावोच्छ्वास मे अत्यंत सुंदर होने के कारण बंगला-भाषा के अलंकार हैं।

जगन्नाथ-मंदिर का दैनिक विवरण लिखने के लिये वहाँ

एक लेखक रहा करता था। माधवी के अक्षर बहुत सुदर बनते थे, इसलिये उनकी रचना के माधुर्य और पाडित्य पर मुग्ध तत्कालीन राजा प्रतापरुद्र ने उन्हे, स्त्री होने पर भी, जो सम्मान का पद दिया था, वह हाल भी चैतन्यचरितामृत मे दिया हुआ है।

माधवी की कविता प्रसिद्ध बगाली-कवि बलरामदास, गोविंददास, वासुदेव घोष आदि की कविता से किसी अश मे निकृष्ट नहीं होती थी।

४०. आनदमयी

आनदमयी देवी फरीदपुर-जिले के अतर्गत जगसा-गॉव के रहनेवाले प्रसिद्ध कवि और साधक पडित रामगति राय की कन्या और पयोग्राम के पडित कवींद्र अयोध्याराम की पत्नी थीं।

आनन्दमयी ने अपने पिता से बँगला और सस्कृत की शिक्षा पाई थी। धर्म-शास्त्र का उन्हे विशेष ज्ञान था। विदुषी होने के कारण उनकी प्रतिष्ठा भी खूब थी।

आनदमयी की विद्वता के सबध मे दो-एक प्रवाद प्रचलित हैं। राजनगर-निवासी सुप्रसिद्ध कृष्णदेव विद्यावागीश के पुत्र हरि विद्यालकार ने आनदमयी को एक शिव-पूजा की पद्धति लिखकर दी थी।

विद्यालकार का लेख भ्रम-पुर्ण और जगह-जगह पर अशुद्ध भी था। आनदमयी ने वह पद्धति देखकर विद्यालकार के पिता विद्यावागीश को तिरस्कृत करते हुए लिख भेजा कि आप

अपने पुत्र की शिक्षा पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। सस्कृत-शास्त्र मे विशेष अभिज्ञता हुए विना विद्यालकार के लेख की सूक्ष्म भूले आनदमयी की नजर मे नही पड सकती थी।

एक समय राजा राजवल्लभ ने पडित रामगति के पास अनुचर भेजकर अग्निष्टोम-यज्ञ के प्रमाण और उसके यज्ञ-कुड की आकृति माँग भेजी। रामगति उस समय एक पुरश्चरण कर रहे थे। इसी कारण उस समय वह स्वय यह कार्य नहीं कर सकते थे। कन्या की विद्वता और जानकारी के ऊपर उनका दृढ विश्वास था। उन्होने अपनी कन्या को ही यह काम सौप दिया। तब आनदमयी ने यज्ञ के प्रमाण और यज्ञ-कुड का आकार आदि शास्त्र मे देखकर लिख दिया, और राजा का वह अनुचर उसे ले गया। रामगति राय उस समय के बडे और श्रेष्ठ पडित थे। उनका बताया अग्निष्टोम का प्रमाण और यज्ञ-कुड की आकृति विशुद्ध और सर्वमान्य होगी, यह समझ कर ही राजा ने उनके पास अपना अनुचर भेजा था। परतु वे स्वय आप यह काम न कर सके, और उनकी कन्या ने कर दिया। किंतु राजसभा के पडितो ने उसी को बिना किसी आपत्ति के विशुद्ध मान लिया। इसी से जाना जा सकता है कि आनदमयी का शास्त्र-ज्ञान पिता से कम नही था, और इस बारे मे राजसभा के पडितो को भी रत्ती-भर सदेह नही था।

आनदमयी कोरी विदुषी ही नहीं, एक सफल कवयित्री भी थीं। यह कई खड-काव्य लिखकर अपनी मातृभाषा को अलकृत कर गई है। आनदमयी के चाचा जयनारायण राय भी

एक अच्छे कवि थे। कहा जाता है, जयनारायण-रचित 'हरि लीला' मे बहुत-सी रचना आनदमयी की है। आनदमयी की रचना जगह-जगह खूब पाडित्य और शब्दाडबर से परिपूर्ण है। उनकी रचना का शब्द-विन्यास देखकर ही यह जाना जा सकता है कि सस्कृत-भाषा मे उनका विशेष अधिकार था। दुख का विषय है कि उनकी सब रचनाएँ आजकल नहीं मिलती।

हरि-लीला के अलावा जयनारायण-रचित चडीकाव्य मे भी आनदमयी की रचना शामिल है। आनदमयी-रचित 'उमा विवाह' (उमा का व्याह) बगाल मे विशेष प्रसिद्ध और प्रचलित है। अनेक स्त्रियो को तो वह आदि से अत तक कठस्थ है।

४१. गगामणि

आनन्दमयी देवी की एक विदुषी बुआ थीं, उन्हीं का नाम गगामणि था। छोटी-छोटी कविता और विवाह के समय गाने योग्य अनेक सुदर-सुदर गान इन्होने रचे हैं। बहुत दिन तक बगालियो के यहाँ स्त्रियाँ इनके बनाए गीत गाती रही हैं। इस नवीन रुचि के जमाने मे भी दो-एक बुड्ढी औरतो के मुँह से इनके बनाए गीत सुन पडते हैं। इन्होने सीता के व्याह का विषय लेकर एक खड-काव्य भी बनाया था।

४२. वैजयन्ती

फरीदपुर-जिले के धनुका गाँव मे, वैदिक कृष्णत्रेय गोत्र

मे, सुपडित मयूरभट्ट के वश मे, बैजयती देवी का जन्म हुआ था। जब बहुत ही बचपन था, तभी से विद्या-शिक्षा के ऊपर वैजयती को बडा अनुराग था। बैजयती जब अच्छी तरह बोल नही सकती थी, तभी से वह अपने पिता के घर की पाठशाला मे विद्यार्थियो की तरह हाथ मे पोथी लेकर पढने का खेल खेला करती थी। बैजयती के पिता ने पढने के लिये कन्या का यह अद्भुत अनुराग देखकर उन्हे पढाने-लिखाने का इरादा कर लिया, और कुछ समय बाद वह उन्हें आप पढाने लगे।

सुना जाता है, बहुत थोडे ही समय मे बैजयती ने अक्षर पहचान लिए, और कुछ ही वर्षों मे सस्कृत-भाषा मे विशेष योग्यता प्राप्त कर ली। काव्य और व्याकरण की शिक्षा समाप्त हो जाने पर वैजयन्ती ने दर्शन-शास्त्र पढना शुरू किया। उनके पिता जिस समय छात्रो को दर्शन-शास्त्र की शिक्षा देते थे, उस समय बैजयती अत्यत मनोयोग से उसे सुनती थी, और गुरु-शिष्य के बीच दर्शन-शास्त्र से सबध रखने वाले जितने तर्क उठते थे, उनकी मीमासा को वह बडे यत्न के साथ स्मरण रखती थी।

कोटाल्नीपाडा के दुर्गादास तर्कवागीश के पुत्र पडित कृष्ण-नाथ के साथ बैजयती का विवाह हुआ। दुर्गादास तर्कवागीश वंश-मर्यादा मे वैजयती के पिता से श्रेष्ठ थे, इस कारण उनके पुत्र के साथ बैजयती का विवाह नही हो सकता था। किन्तु उन्होने केवल बैजयती की विद्वता देखकर यह विवाह-सम्बन्ध स्वीकार कर लिया था। पिता ने तो कुलीनता का अभिमान छोड दिया, मगर पुत्र का वह अभिमान किसी तरह

नही गया । विवाह के समय तो उन्होने पिता का विरोध नही किया लेकिन मन-ही-मन असतुष्ट रहे ।

जब तक उनके ससुर जीते रहे, तब तक तो वैजयती बीच बीच मे जाकर ससुराल मे रहती रही । मगर ससुर के मरने पर कृष्णनाथ ने यह कहकर वैजयती को त्याग दिया कि वह वश-मर्यादा मे उनके समान नही है। स्वामी के सुख से वचित होकर वैजयती अपने पिता के घर मे ही रहने लगी । इस समय का सारा कष्ट वह पढ़ने-लिखने मे भुलाए रहती थी । न्याय, काव्य अलकार-शास्त्र आदि जो कुछ भी अधूरा था, सो सब उन्होने इस समय सीख लिया ।

कुछ दिन बाद वैजयती ने अपने दु:ख का वर्णन करके स्वामी को एक करुण-पत्र लिखा । कृष्णनाथ उस पत्र की करुण-कहानी पढ़कर बहुत पछताए और अपनी स्त्री की विद्या और कवित्व-शक्ति पर मुग्ध भी हो गए । तब उनकी समझ मे आ गया कि साधारण अभिमान के फेर मे पडकर उन्होने अपनी स्त्री के साथ बडा अन्याय किया है । वे फौरन आकर वैजयती को अपने घर लिवा ले गये ।

स्वामी के घर वैजयती ने पढने-लिखने का व्यसन नही छोडा । गिरिस्ती के सब काम-काज करने के बाद जो समय मिलता था, उसमें वह स्वामी से दर्शन-शास्त्र पढती थी । सुना जाता है, किसी दिन कृष्णनाथ अपने छात्रो को कोई प्राचीन दर्शन-शास्त्र पढा रहे थे। उस ग्रथ मे एक जगह लिखा था—"अत्र तु नोक्तम् तत्रापि नोक्तम् ।" पडित कृष्णनाथ इसका अर्थ करते थे, यहाँ भी नही कहा गया, और वहाँ भी नही. कहा

गया। किंतु इससे पाठ की सगति नही लगती थी, और इसी कारण कृष्णनाथ को भी इस अर्थ से सतोष नही होता था। यथार्थ निर्णय करने के लिये कृष्णनाथ सोचने लगे।

सोचते-सोचते बहुत देर हो गई। उधर वैजयती रसोई तैयार करके चौके मे बैठी स्वामी के आने की राह देख रही थी। इसी समय एक छात्र किसी काम के लिये घर के भीतर आया। वैजयती ने उससे उस दिन पाठ मे विलब होने का कारण पूछा। उस छात्र ने कहा—आज "अत्र तु नोक्तम् तत्रापि नोक्तम्" इस पाठ का कुछ सुसगत अर्थ न लगाने के कारण देर हो रही है। वैजयती ने कहा—तुम जाकर गुरुजी से स्नान-आहार करके तबियत ठीक करने के लिये कहो। बाद को अर्थ लग जायगा।

कृष्णनाथ छात्र के मुख से यह सुनकर पोथी बद करके नहाने-खाने गए। उधर वैजयती छात्र के मुख से पाठ सुनकर उसका यथार्थ अर्थ समझ गई थी। उन्होने मौका पाकर पुस्तक खोलकर "अत्र तु न उक्त तत्र अपि न उक्त" वह पदच्छेद लिख दिया। नहा-खाकर कृष्णनाथ विश्राम करने लगे। तीसरे पहर उस पाठ का अर्थ लगाने के लिये पुस्तक खोली, तो देखा, उस पाठ का अर्थ स्पष्ट करने के लिये किसी ने वैसा पदच्छेद करके उसे सहज-बोध कर रक्खा है। इस कार्य से वह बहुत ही सतुष्ट हुए। यह काम जिसने किया था, उसे पुरस्कृत करने के लिये उन्होने छात्रो से पूछा। लेकिन छात्रो मे से कोई कुछ न बता सका। तब वह अपने मन मे समझ गए कि उनकी पत्नी का ही यह काम है।

बैजयती देवी ने अनेक उद्भट श्लोक और कविता रची है। लेकिन इस समय उनका पता नही लगता। उस समय समाज मे स्त्रियो के नाम से रचना प्रकाशित करने का नियम नही था। इसी कारण बैजयती की रचनाओ के साथ उनका नाम प्रकट नही है।

कृष्णनाथ ने जो आनदलतिका चपू लिखा था, उसमे उन्होने अपनी पत्नी को उसमे सहायता करनेवाली कहकर स्वीकार किया है। उस ग्रथ मे लिखा है—

"आनद्लतिकाग्र थो येनाकारि स्त्रिया सह।"

स्त्री का नाम प्रकट करना नीति-विरुद्ध समझकर कृष्णनाथ ने अपने ही नाम से आनदलतिका चपू का प्रचार किया था। ध्यान लगाकर वह ग्रथ पढने से स्पष्ट जान पडता है कि कौन अश कृष्णनाथ की रचना है, और कौन अश बैजयती की।

बैजयती देवी रचना मे केवल निपुण ही नही, फुरतीली भी थी। सुना जाता है, आनदलतिका रचने के समय एक दिन कृष्णनाथ सायकाल से अर्धरात्रि तक बैठे नायिका के रूप का वर्णन ही लिखते रहे। यह देखकर बैजयती देवी ने अपने स्वामी से कहा—आप इतनी देर से एक स्त्री के रूप का ही वर्णन लिख रहे है। देखिये, मै एक ही श्लोक मे आपकी नायिका के तीन अगो का वर्णन किए देती हूँ। इतना कहकर उन्होने आनदलतिका के लिये श्लोक तुरत बना दिया—

अहिरय कलधौतगिरिभ्रमात्
स्तनमगात् किल नाभिह्रदोत्थित।
इति निवेदयितु नयने हि तत्
श्रवणसीमनि कि समुपस्थिते।

अर्थात्—निश्चय ही नाभिकुड से निकला हुआ सर्प (रोमावली) शुवर्ण-पर्वत के भ्रम से स्तनो के बीच पहुँचा है, यही निवेदन करने के लिये क्या उस स्त्री के दोनो नयन कानो तक पहुँचे हैं ?

कैसा मनोहर मुग्धा के अगो का वर्णन है ! खूबी यह है कि सक्षिप्त होने पर भी सार गर्भ है ।

बैजयती देवी बगाली-जाति की विदुषियो मे सर्व-श्रेष्ठ और असाधारण प्रतिभाशालिनी थी, इसमे कुछ भी सदेह नही । उनका जन्म किस समय हुआ था, यह ठीक नही मालूम हो सका । मगर आनदलतिका-ग्रथ की रचना का काल देखने से अनुमान होता है कि वह १५५० शाके मे पैदा हुई थी, और आनदलतिका ग्र थ की रचना के समय उनकी अवस्था लगभग पच्चीस वर्ष की रही होगी ।

४३. मानिनी देवी

उत्तर-वग मे परम प्रसिद्ध इद्रेश्वरचूडामणि नाम के एक महामहोपाध्याय पडित थे । माननी देवी उन्ही की कन्या थी । उनके भाई धनेश्वर जिस समय विद्यारभ के उपरात वर्णमाला सीखते थे, उस समय वही देखकर मानिनी ने वर्णमाला सीख ली थी । उन्हे अलग वर्णमाला सिखाने की आवश्यकता नही हुई । उसके बाद उनके भाई जब व्याकरण पढने लगे, तब मानिनो ने भी केवल सुनकर ही उसे सीख लिया । उस समय सायकाल की सध्योपासना के बाद अध्यापक लोग छात्रो के पूर्वपठित अश की परीक्षा लिया करते थे—इसे जिज्ञासावाद

कहते थे, पूजा के लिय सुदर फल ला देने का प्रलोभन दिखाकर मानिनी से उत्तर पूछ लेते थे। इसी से मानिनी की तीव्र स्मरण-शक्ति का परिचय प्राप्त होता है।

स्मृति-तत्व मे मानिनी देवी अच्छी तरह व्युत्पन्न थी। २१ दिन की अवस्था के पुत्र को छोडकर जब मानिनी पति की लाश के पास बैठी थी, और पति के साथ सती होने की इच्छा प्रकट कर रही थी, उस समय उनके चाचा हरिनारायण ने यह कहकर उन्हे रोका कि इतने छोटे बच्चे को छोडकर सती होना शास्त्र मे निषिद्ध है। किंतु मानिनी देवी ने यह बात नही मानी। उन्हे शास्त्रीय तर्क के द्वारा समझा दिया कि इस तरह सती होना शास्त्र मे निषिद्ध नही कहा गया है। वह हँसते-हँसते जलती हुई चिता मे बैठकर सती हो गई। उस समय मानिनी देवी ने शास्त्र की जानकारी दिखलाई थी, उसे देखकर उनके प्रसिद्ध विद्वान् चाचा भी दग हो गए थे।

जिस २१ दिन के बालक को छोडकर मानिनी सती हुई थी, वही बालक बगाल का सुप्रसिद्ध नैयायिक पडित रुद्रमगल न्यायालकार हुआ। रुद्रमगल की बराबरी का नैयायिक पडित उस समय नवद्वीप (नदिया) मे भी नही था।

मानिनी देवी ने सस्कृत मे बहुत-सी कविता लिखी है। बहुत लोगो को उनकी कविता कठस्थ थी। उनके बनाए शिव-स्तोत्र के दो श्लोक यहाँ नमूने के तौर पर लिखे जाते हैं—

तरणिधरणी सलिल पवना
मगन च विरचिनुतस्व तनो।

राशलाछनभूषण चद्रकला-
स्तनवस्तव यो यजते स च ते ॥
करुणाजलधे हरिणाकशिरो
गिरिराजसुतादयित प्रणताम् ।
त्व पादसरोरुहकिकरिका
भवबधनतरतु समुद्धर माम् ॥